I.S.S.N. 0975-6531

₹50/-

वैचारिकी

VAICHARIKI

नवम्बर-दिसम्बर 2020 * भाग 36 · अंक 6

भारतीय विद्या मन्दिर

भारतीय विद्या मंदिर की द्वैमासिक शोध प्रधान पत्रिका

भारतीय विद्या मंदिर के प्रकाशन

भारतीय तत्व चिंतन
विट्ठलदास मूंधड़ा
मूल्य 150/- पृ.सं. 160
ISBN : 978-81-89302-15-9

रसो वै सः
विट्ठलदास मूंधड़ा
मूल्य 150/- पृ.सं. 165
ISBN : 978-81-89302-18-7

सुखी जीवन
विट्ठलदास मूंधड़ा
मूल्य 275/- पृ. सं. 216
ISBN : 978-81-89302-02-8

Human Values
Satya Vrat Shastri
Price : Rs. 395/- Pages : 264
ISBN : 978-81-89302-45-0

मानव मूल्य परिभाषाएं और व्याख्याएं
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 550/- पृ. सं. 324
ISBN : 978-81-89302-62-9

Human Value (Tamil)
Satya Vrat Shastri
Price 450/- Pages : 320
ISBN : 978-81-89302-56-6

चाणक्यनीतिः
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 295/- पृ.सं. 194
ISBN : 978-81-89302-42-9

Kamayani
Tr. Jaikishandas Sadani
Price : Rs. 800/- Pages : 477
ISBN : 978-81-89302-44-3

मीरांबाई
प्रामाणिक जीवनी एवं मूल पदावली
सम्पा. नरेन्द्र कुमार सिकरिया
मूल्य 900/- पृ.सं. 584
ISBN : 978-81-89302-41-2

पुस्तकादेश हेतु संपर्क करें :
शंकरलाल सोमानी, सिम्फोनिया हाउस, 27, शेक्सपीयर सरणी, कोलकाता-700 017 मोबाइल 09830559964 ई-मेल : shankarsomani@simpleindia.com

वैचारिकी

भारतीय विद्या मन्दिर की द्वैमासिक शोध प्रधान पत्रिका

वर दे, वीणावादिनि वर दे !
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव भारत में भर दे !
काट अंध-उर के बंधन-स्तर बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर:
कलुष-भेद-तम हर प्रकाश भर जगमग जग कर दे!
नव गति, नव लय, ताल-छंद नव नवल कंठ, नव जलद-मन्द्ररव;
नव नभ के नव विहग-वृंद को नव पर, नव स्वर दे!
वर दे, वीणावादिनि वर दे!

डॉ. विट्ठलदास मूंधड़ा
अध्यक्ष एवं प्रधान सम्पादक

अध्यक्ष एवं प्रधान संपादक
डॉ. विट्ठलदास मूंधड़ा

संपादकीय कार्यालय
भारतीय विद्या मंदिर
121, नेली सेनगुप्ता सरणी
कोलकाता-700 087
दूरभाष : 033-71001613
ई-मेल : bvm.vaicharik@gmail.com
वेबसाइट : www.bharatiyavidyamandir.org

साहित्य संपादक
राजेन्द्र पुष्प
मोबाइल : 9434199898
ई-मेल : rawelpushp@gmail.com

प्रबंध संपादक
शंकरलाल सोमानी
27, शेक्सपीयर सरणी
कोलकाता-700 017
मोबाईल : 09830559364
ई-मेल : shankarsomani@gmail.com

सदस्यता शुल्क
एक प्रति 50/- रुपये
वार्षिक 300/- रुपये
द्विवार्षिक 600/- रुपये

भुगतान
Payee's Name:
BHARATIYA VIDYA MANDIR
Current A/c No. : 32000320176
Bank : STATE BANK OF INDIA
Branch: New Market
IFSC Code No. : SBIN0004662

ISSN 0975-6531 वर्ष : 36 अंक : 6

वैचारिकी

धर्म-दर्शन विज्ञान, साहित्य-लोकसाहित्य, इतिहास पुरातत्त्व, कला लोककला
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग मान्यता क्रमांक 40935

नवम्बर-दिसम्बर, 2020 ✱ कार्तिक कृष्ण 1 - पौष कृष्ण 1, 2077 वि. सं. ✱ ₹ 50/-

अनुक्रम

- विदेशों में वल्लभ संप्रदाय एवं उसके ब्रजभाषा वार्ता साहित्य में शोध, अध्ययन एवं आलोचना की दशा और दिशा - **नवनीत आचार्य** 6
- कबीर काव्य में संगीत के स्वर - **डॉ. प्रियंका** 11
- न मांगा कोई मेरे लिए न मांगूंगी मैं किसी के लिए : लल्लद्यद - **डॉ. शिबन कृष्ण रैणा** 19
- Quest for Truth - **Dr. B. D. Mundhra** 22
- गुरुनानक के भक्ति संबंधी विचार - **डॉ. अमरेंद्र पांडेय** 28
- रामकथा के कुछ विवादास्पद प्रसंग - **प्रो. योगेश चन्द्र शर्मा** 34
- पंडित शादीराम की श्रीकृष्ण लीला - **उदय ठाकुर** 38
- तमिल साहित्य एवं संस्कृति पर संस्कृत का प्रभाव - **डॉ. एम. शेषन** 41
- प्राचीन राजस्थान में मनोरंजन - **डॉ. सतीश कुमार त्रिगुणायत, श्रीमती रेखा देवी शर्मा** 49
- बंदी छोड़ दिवस के रूप में मनाई जाती है स्वर्ण मंदिर में दीपावली - **राजेन्द्र पुष्प** 57
- लोककवि घाघ की कृषि व मौसम वैज्ञानिक रचनाएं - **बद्री नारायण तिवारी** 65
- गुलिस्तां में देववाणी की गूंज - **सत्यव्रत शर्मा** 66
- भारतीय आत्मा की कल्पनाएं - **दयाशंकर** 72
- 11वीं-12वीं शताब्दी का जैन तीर्थ "तिमनगढ़" - **डॉ. रामजीलाल कोली** 81
- कवि भूषण के काव्य में राष्ट्रीय स्वर - **प्रो. गीता कपिल** 85
- पाठक-मंच 89
- प्रतिस्वर 93

- प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु लेखक-प्रकाशक की अनुमति आवश्यक।
- प्रकाशित लेखादि में अभिव्यक्त विचारों से प्रकाशक-सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
- समस्त विवादों के लिए न्यायालय क्षेत्र कोलकाता।

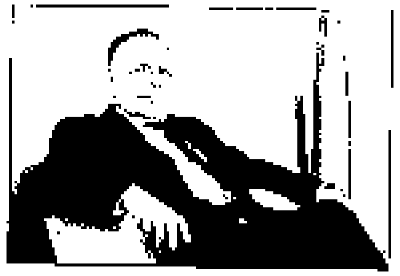

विचार

साल 2020 के आखिरी अंक के साथ ही आप सबसे हो रही है बातचीत।

हमारी चेष्टा तो यही है कि फिर से जिंदगी पटरी पर लौट आए और हम नियमित अंतराल पर ही आप तक अंक लेकर उपस्थित हो सकें। इस साल के आखिर में ये उम्मीद तो निश्चित तौर पर अब बंध चली है कि आने वाला साल उम्मीदें भरा ही होगा और जानलेवा कोरोना वायरस के विरुद्ध हम एक-दो सफल वैक्सीन तैयार कर ही चुके होंगे।

वैसे जो भी हो, इस कोरोना काल के दौरान कई सकारात्मक परिणाम भी इस रूप में सामने आए हैं कि हम अपने आप को पहचानने की, जानने की प्रक्रिया से भी गुजरे हैं। मुझे भी लगा कि आत्मचिंतन की प्रक्रिया स्वतः ही अपनी पूरी शक्ति से गतिमान हो रही है। दुनिया की तेज रफ्तार जिंदगी में एक ठहराव सा लगा। पंच तत्वों से बने शरीर में पृथ्वी तत्व एक मुख्य घटक होने के कारण ही शायद यह पार्थिव भी कहा जाता है। कहा गया है जो ब्रह्मांडे, सोई पिंडे, यानि इसी पिंड में, इसी शरीर में ब्रह्मांड की सारी शक्तियां मौजूद हैं सिर्फ हमें उसे जागृत करना है। जागृत करने के लिए उसके अंदर बैठे उस अदृश्य को पहचानना है, जानना है। उसे जानने के लिए तो अपने अहं को, अपने मैं को तिलांजलि देनी है। तभी तो हम परिवार में भी अपने से ज्यादा दूसरों को महत्व देने का उपक्रम कर पाते हैं। यही भावना फिर परिवार से बाहर तक भी अनायास ही प्रवाहित होने लगती है। बाहरी तौर पर जहां कोरोनाकाल का कोरोनादुख स्वाभाविक था, लेकिन मुझे लगा कि भीतरी तौर पर अपनी अन्तश्चेतना में कहीं कोरोनासुख का अनुभव हुआ। मेरे स्वास्थ्य की चिंता परिवार ने जिस शिद्दत से की, दूरदराज के मित्रों ने लगातार सम्पर्क कर फिक्र की। उससे सम्बन्धों में एक नयापन आया, एक ताजगी का एहसास हुआ। मैं स्वयं खुद से भी मिलकर खुश हुआ, सुखानुभूति हुई। ये अंतश्चेतना किन-किन चीजों से किन रूपों में प्रभावित होती है और फिर किस रूप में मनुष्य के व्यवहार में परिवर्तन लाती है, इसका कोई वैज्ञानिक विश्लेषण कर पाना शायद संभव नहीं।

इस कोरोना काल में विचारों को तो जैसे पंख लगे ही हुए थे। घर बैठे-बैठे कई तरह के विचार मन में उमड़-घुमड़ रहे थे। मैं क्या हूं, मेरा उद्देश्य क्या है? कई तरह की बातें मन में आनी शुरू हो रही थीं। जीवन कैसा रहा, आगे क्या होगा, उम्र के अंतिम पड़ाव पर आकर यह भी लगने लगा कि सब कुछ यहीं छूट जाएगा। जीवन का अंत तो है लेकिन क्या चेतना का भी अंत हो जाएगा। गीता में कृष्ण ने कहा है कि पुनर्जन्म तो होता रहेगा। यह शरीर पुराने

कपड़ों की तरह त्याग दिया जाएगा। नया जीवन, नई देह, फिर नए संबंध बनेंगे, पुराने संबंध पत्नी, पुत्र, माँ, पिता, भाई, बहन यह सारे बदल जाएंगे। पिता चले गए उनसे मुलाकात अब कहां होती है, केवल यादें बनी रहती हैं। लेकिन फिर भी जीवन तो सतत गतिमान है। बीत चुकी बातों को, प्यारे सम्बन्धों को भी भूलना ही पड़ता है। कविवर हरिवंशराय बच्चन की प्रेरणा दायक पंक्तियां याद आती हैं

जीवन में एक सितारा था
माना वह बेहद प्यारा था
वह डूब गया तो डूब गया
अंबर के आंगन को देखो
कितने इसके तारे टूटे
कितने इसके प्यारे छूटे
जो छूट गए फिर कहाँ मिले
पर बोलो टूटे तारों पर
कब अंबर शोक मनाता है
जो बीत गई सो बात गई

सचमुच बचपन से जवानी और उम्र के इस पड़ाव तक आते-आते कितने साथी मिले और छूट गए, यही तो संसार का नियम है। सबके साथ यही होना है फिर इसकी चिंता क्या करना। हर रोज पूरब से उगते हुए सूरज को नई दृष्टि से देखना, यही तो जीवन है। फिर यह जो चेतना है इस संबंध में विशाल कथा कहता है इस पर भी विस्तृत चर्चा के लिए मुझे याद आती है एक कॉन्फ्रेंस जिसमें बहुत सारे वैज्ञानिक और दार्शनिक देश दुनिया से पधारे थे। अधिकतर ने कहा था कि चेतना सब जगह है, सब में है, कण-कण में है। इनमें से अमित गोस्वामी तो यहां तक कह गए थे कि पृथ्वी भी चैतन्य है। चेतना कभी मरती नहीं, वह तो शाश्वत है। मुझे Brain Weiss की कुछ पुस्तकें याद आ गई जिसमें उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर यह कहा था कि जन्म तो बार-बार होता है और तब तक होता रहेगा जब तक इस जीव का चेतन परम चैतन्य से नहीं मिल जाता। यह संसार तो हमारी चेतना पर जो मैल, जो धूल जम गई है उसे साफ करने के लिए ही है। जिस दिन यह साफ हो जाएगी उस दिन हम परम चैतन्य अवस्था को प्राप्त हो जाएंगे। इन्हीं विचारों पर कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि यह चेतना हमारे मस्तिष्क में कुछ इलेक्ट्रोकेमिकल्स का परिणाम है।

आज न जाने क्यों शंकराचार्य की वाणी भी मेरे अन्तस् में गूंज रही है

सच तो यह है कि जिंदगी के मूलभूत प्रश्नों के उत्तर बौद्धिक तर्कों से नहीं मिलते बौद्धिक तर्कों में ज्ञान का आभास तो है, पर ज्ञान नहीं ज्ञान तो 'अनन्तं निर्विकल्पं' है। शांत और शून्य होने पर प्रकट होता है। तभी समस्याएं गिर जाती हैं। स्वयं को जाने बिना ज्ञान की प्यास नहीं मिटती, अंतस् की जलन नहीं मिटती। स्वयं को जानना ज्ञान है, बाकी सब जानकारी है। चित्त जिस क्षण भटकनभरी बौद्धिकता को छोड़कर चुप और स्थिर हो जाता है, उसी क्षण 'सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म' के द्वार खुल जाते हैं। दिशाशून्य चेतना प्रभु में विलीन हो जाती है और ज्ञान की इस प्यास का अंत केवल प्रभु मिलन में है।

अब फिर मैं ईशावास्योपनिषद् की पंक्तियों से गुजर कर दर्शन करना चाहता हूं सत्य

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये

इसका अर्थ तो यही हुआ कि परब्रह्म सूर्यमण्डल के मध्य स्थित है, किन्तु उसकी अत्यन्त प्रखर किरणों के तेज से हमारी ये भौतिक आंखें उसे नहीं देख पातीं। सच्चाई का मुख (ऊपरी भाग) तो स्वर्ण के आवरण से आच्छादित है, हे ईश्वर तुम इस आवरण को मेरी दृष्टि के सामने हटा दो, ताकि मैं सत्य की ज्योति का दर्शन कर सकूं! जो परमात्मा वहां स्थित है, वही मेरे भीतर विद्यमान है। मैं ध्यान द्वारा ही उसे देख पाता हूं। हे अग्ने! हे विश्व के अधिष्ठाता! आप कर्ममार्गों के श्रेष्ठ ज्ञाता हैं। आप हमें पाप कर्मों से बचायें और हमें दिव्य दृष्टि प्रदान करें। यही हम बारम्बार नमन करते हैं।

अपने विचारों की इस उथल-पुथल में आप सब को भी मैंने शरीक कर लिया, पर फिर भी इतना मंथन करने के बावजूद कहां मालूम है कि सत्य क्या है ?

जयशंकर प्रसाद की कामायनी की ये पंक्तियां भी याद आती हैं -

सत्य, यह एक शब्द
तू कितना गहन हुआ है

फिलहाल अब इस प्रार्थना पंक्ति के साथ इस अंक के लिए विदा -

सत्य धर्माय दृष्टये.....

(विट्ठल दास मूंधड़ा)

पुनश्च : इस विषय पर संभाषणों की एक श्रृंखला भारतीय विद्या मंदिर शीघ्र ही आयोजित करने जा रहा है।

प्रधान संपादक

और फिर बुझ गई पहाड़ पर लालटेन

'पहाड़ों की यातनाएं हमारे पीछे हैं और मैदानों की हमारे आगे' जर्मन कवि बर्तोल्त ब्रेख्त की यह काव्य पंक्तियां उस कवि को बड़ी प्रिय थीं, जो हमारे समय के काव्य जगत के एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर थे और नाम था उनका - मंगलेश डबराल !

16 मई 1948 को उत्तराखंड में जन्मे मंगलेश के कई महत्वपूर्ण कविता संग्रह हैं जिनमें प्रमुख हैं पहाड़ पर लालटेन, घर का रास्ता, हम जो देखते हैं, आवाज भी एक जगह है, नए युग में शत्रु।

उनके गद्य संग्रह : लेखक की रोटी तथा कवि का अकेलापन

यात्रा वृत्त : एक बार आयोवा

उन्होंने कई साहित्यकारों पर बने वृत्तचित्रों का पटकथा लेखन भी किया और कई महत्वपूर्ण अनुवाद भी किए, जिनमें शामिल थे - बांग्ला कवि नवारुण भट्टाचार्य के कविता संग्रह यह मृत्यु उपत्यका नहीं है मेरा देश तथा कई विदेशी भाषाओं से भी अनुवाद किये।

उन्हें कई सम्मानों से भी नवाजा जा चुका था, मसलन ओमप्रकाश स्मृति सम्मान, श्रीकांत वर्मा पुरस्कार, शमशेर सम्मान, पहल सम्मान, साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा अन्य कई। वे कई पत्र-पत्रिकाओं के संपादन से भी जुड़े रहे - मसलन प्रतिपक्ष, अमृत प्रभात, रविवारी जनसत्ता, सहारा समय और नेशनल बुक ट्रस्ट।

इस प्रिय कवि को निष्ठुर कोरोना ने 9 दिसंबर 2020 को हमसे छीन लिया और फिर बुझ गई पहाड़ पर लालटेन !

हमारी विनम्र श्रद्धांजलि...

- संपादक

विदेशों में वल्लभ संप्रदाय एवं उसके ब्रजभाषा वार्ता साहित्य में शोध, अध्ययन एवं आलोचना की दशा और दिशा

अजीत आवारी

पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी (सं. 1535-1587)[1] द्वारा प्रतिपादित पुष्टिमार्ग अथवा वल्लभ संप्रदाय के अति महत्त्वपूर्ण एवं लोकप्रिय ग्रंथ हैं। उक्त संप्रदाय के विभिन्न भक्तों एवं आचार्यों का वर्णन करने के साथ ही साथ इनमें पुष्टि भक्तिमार्ग के शुद्धाद्वैत सिद्धांतों का सहज समावेश उत्कृष्ट साहित्यिक शैली के साथ दृष्टिगोचर होता है।

पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य के अंतर्गत प्रमुख तौर पर गोस्वामी गोकुलनाथजी (सन् 1551-1640)[2] द्वारा रचित 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' एवं 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' शामिल हैं। तथ्यों से ज्ञात होता है कि ये आचार्य वल्लभ एवं गो. विट्ठलनाथजी के क्रमशः 84 एवं 252 शिष्यों (सेवकों) का जीवन चरित्र हैं। ये वार्ताएं लोकप्रिय अंदाज में आम बोल-चाल की ब्रजभाषा में वर्णित हैं। पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य भक्ति एवं समाज का व्यापक दस्तावेज प्रस्तुत करने वाली अन्यतम रचनाएं हैं। जिस भक्ति को आचार्यों की देन कहा जाता है उसे गो. गोकुलनाथजी ने एक विशाल दायरे में परिकल्पित किया है। भक्ति के प्रति उनका चिंतन एवं उस पूरे युग के युगबोध को जांचने-समझने के क्रम में पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य आधार स्तम्भ हैं। भारतीय एवं पाश्चात्य भक्ति आलोचना की बाबत भी उक्त वार्ता साहित्य लगातार केंद्र में रहे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त, डॉ. सत्येंद्र, डॉ. हरिहरनाथ टण्डन, गार्सां द तासी, मिश्र बंधु प्रभृति विद्वानों ने समय-समय पर वल्लभ संप्रदाय एवं वार्ता साहित्य पर महत्त्वपूर्ण लेखन कार्य किया।

विदेशों में भी वल्लभ संप्रदाय एवं उसके ब्रजभाषा वार्ता साहित्य में शोध, अध्ययन एवं आलोचना की काफी धूम रही। ब्रजभाषा गद्य की परंपरा के विकास एवं भक्ति संवेदना पर चर्चा के क्रम में विदेशों में इनका अध्ययन क्रम लगातार चलता रहा है। इस पत्र के माध्यम से इस पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जा रहा है। इस दिशा में अमेरिकी विद्वानों का नाम अग्रणी है। उन्होंने महत्वपूर्ण शोध एवं आलोचना की दिशाएं प्रशस्त की हैं। निम्नांकित अनुच्छेदों के माध्यम से इस तथ्य पर प्रकाश डाला जा रहा है -

जॉन स्ट्रेटन हॉली (John Stratton Hawley) ने 'द संक्टोरियन लॉजिक ऑफ द सूरदास की वार्ता' नामक शोध कार्य में 84 वैष्णवन की वार्ता में संकलित सूरदास की वार्ता के विविध बिन्दुओं पर विस्तृत प्रकाश डाला है। उन्होंने सूर के ब्राह्मणत्व व जन्मांधता पर चर्चा करते हुए सूर पर हुए महत्वपूर्ण शोध कार्यों की भी चर्चा की है। इस संदर्भ में उन्होंने सूर की वार्ता के टीकाकार (भावप्रकाश) गो. हरिरायजी के अवदान को भी रेखांकित किया है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि कैसे ये वार्ता आचार्य वल्लभ एवं उनके सुपुत्र गो. विट्ठलनाथजी के जीवनकाल में फैली होने के कारण इन दोनों आचार्यों के जीवन के दौरान संप्रदाय के स्वरूप पर भी मुकम्मल प्रकाश डालती है। इस संबंध में उन्होंने वार्ताकार के अलौकिक दृष्टि की प्रमुखता पर भी प्रकाश डाला है। साथ ही इस वार्ता में उद्धृत वेद एवं श्रीमद्भागवत के विविध प्रसंगों के आधार पर उन्होंने उक्त संप्रदाय में इनके महत्त्व पर प्रकाश डाला है।

उल्लेखनीय है कि ईसाई परंपरा के बरक्स उन्होंने वल्लभ संप्रदाय के नाना रूपों को उक्त वार्ता के हवाले से उद्धृत किया है। इस संदर्भ में उन्होंने 'श्री गोवर्धननाथजी की प्राकट्य वार्ता' ग्रंथ का हवाला देते हुए इसके महत्व को विविध भांति रूपायित किया है।

'ऑथर एण्ड अथॉरिटी इन द भक्ति पोएट्री ऑफ नॉर्थ इंडिया' नामक शोध आलेख में जॉन एस. हॉली ने भक्ति साहित्य की विविध धाराओं, परंपराओं एवं संतों की रचनाओं एवं जीवन प्रसंगों पर प्रकाश डाला गया है। इस संदर्भ में उन्होंने वल्लभ संप्रदाय के संदर्भ में सूरदास की रचना प्रक्रिया पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है। इसमें उन्होंने विभिन्न परंपराओं के संदर्भ में वल्लभ संप्रदाय में मान्य गुरु परंपरा पर भी विस्तृत चर्चा की गई है।

जॉन हॉली ने 'द अर्ली सूर सागर एण्ड द ग्रोथ ऑफ द सूर ट्रेडीशन' में भी सूर सागर की रचना प्रक्रिया एवं सूर परंपरा के निर्माण पर भी विस्तृत चर्चा की है। इस क्रम में उन्होंने विभिन्न कालखण्डों में प्राप्त सूरसागर की विभिन्न पाण्डुलिपियों पर भी विविध आयामों दृष्टिपात किया है। ऐसे में इन विभिन्न पाण्डुलिपियों के रूपाकार एवं स्वरूप का हवाला देते हुए लेखक ने इसके धार्मिक एवं साहित्यिक अवदान को विविध भांति रेखांकित किया है।

शार्लोट वॉडविल्ले ने भी 'कृष्णा गोपाला, राधा एण्ड द ग्रेट गॉडेस' नामक शोध आलेख में विभिन्न कृष्णभक्ति संप्रदायों में मान्य राधा के विभिन्न रूपों को उजागर किया है। इसी संदर्भ में उन्होंने पुष्टि संप्रदाय के साहित्य में अभिव्यक्त राधा के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए आधिदैविक एवं दार्शनिक धरातल पर उनका शोधपरक विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

प्रो. मोनियर विलियम्स का भी इस दिशा में महत्वपूर्ण स्थान है। 'हिन्दुइज्म' नामक अपने ग्रंथ में उन्होंने हिन्दू धर्म संप्रदायों के संदर्भ में गहनतापूर्वक हिन्दू मान्यताओं का विस्तृत विवेचन किया है। इसमें उन्होंने विविध पुष्टिमार्गीय ग्रंथों के आधार पर पुष्टिमार्ग के स्वरूप पर प्रकाश डाला है। अपने अध्ययन में उन्होंने आचार्य वल्लभ एवं उनकी वंश परंपरा में उत्पन्न 'महाराजाओं' के रूप पूजित वल्लभ वंशज आचार्यों द्वारा प्रतिपादित गुरुपरंपरा के विभिन्न पहलुओं का उल्लेख किया है। इस क्रम में उनके अध्ययन के केंद्र में भारतीय गुरु-परंपरा और वल्लभ संप्रदाय में उसका अभिग्रहण रहा है।

डब्ल्यू. गालोंगटन ने 'चंद्रावली एण्ड द चौरासी वैष्णवन की वार्ता' नामक शोध कार्य में 84 वैष्णवन की वार्ता में उद्धृत 'चंद्रावली' गोपी की छवि स्पष्ट करते हुए पुष्टिमार्ग में मान्य उनके स्वरूप एवं स्थान को स्पष्ट किया है। यहां लेखक ने विस्तारपूर्वक श्री चंद्रावलीजी के पौराणिक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए वार्ता साहित्य में उल्लिखित उनके वर्णनों को सम्यक् स्थापित की है। इसमें प्रमुख तौर पर लेखक ने 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' द्वारा रचित चंद्रावली गोपी की

छांव एवं वार्ता साहित्य में वर्णित उनकी छांव का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

जेम्स डी. रेडिंगटन के महत्वपूर्ण शोध ग्रंथ हैं- 'वल्लभाचार्य ऑन द लव गेम्स ऑफ कृष्णा'[6] तथा 'एलिमेंट्स ऑफ वल्लभाइट भक्ति सिद्धांत्स।'[7] इनमें उन्होंने आचार्य वल्लभ के विभिन्न ग्रंथों एवं श्रीमद्भागवत के आधार पर वर्णित कृष्ण लीलाओं की बहु आयामी छवियों को उजागर किया है। प्रेम, रस, आनन्दादि के संदर्भ में उन्होंने आचार्य वल्लभ एवं गो. विट्ठलनाथ जी के मतों पर प्रकाश डालते हुए पुष्टिमार्ग में मान्य कृष्ण प्रेम के दार्शनिक स्वरूप को स्पष्ट किया है। इस संदर्भ में उन्होंने वल्लभ संप्रदाय की लेखन परंपरा में विभिन्न टीकाकारों एवं उनकी महत्वपूर्ण रचनाओं का हवाला देते हुए प्रेम, आसक्ति तथा व्यसन की विभिन्न संप्रदायगत मान्यताओं एवं सिद्धांतों का सिलसिलेवार वर्णन किया है। पुष्टिमार्ग की आचार्य परंपरा, भाव-भावना, भक्ति-सिद्धांत, स्नेह, प्रेम, रस, लौकिक एवं अलौकिक तत्व ज्ञान आदि इनके शोध कार्य के केंद्र में हैं।

'जोआयिम वाच' का महत्वपूर्ण ग्रंथ है 'सोशियोलॉजी ऑफ रीलिजियन'[8] इसमें उन्होंने भक्ति सम्प्रदायों पर सामाजिक प्रभावों के संदर्भ में वल्लभ संप्रदाय पर भी चर्चा की है। भौतिक दृष्टिकोण से विचार करते हुए उन्होंने यहां यह दर्शाया है कि किस तरह आचार्यों द्वारा संपन्न यात्राओं के क्रम में धनाढ्य एवं प्रभुत्व संपन्न वर्ग का इस संप्रदाय से जुड़ाव भारी संख्या में होता गया। इस संदर्भ में उन्होंने मैक्स वेबर के मत का हवाला देते हुए भी स्वमत स्पष्ट करने का पुरजोर प्रयास किया है।

'द भक्ति सेक्ट ऑफ वल्लभाचार्य'[9] रिचर्ड बार्ज का महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें उन्होंने वल्लभ संप्रदाय के विभिन्न पहलुओं पर विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला है। वार्ता साहित्य के विविध प्रसंग भी इनके अध्ययन के केंद्र में हैं। इसमें उन्होंने वल्लभ संप्रदाय के इतिहास, परंपरा, सेवा-प्रणालिका, सेव्य स्वरूपों, ग्रंथ रचना, काव्य सृजन, शास्त्रार्थ परंपरा, शुद्धाद्वैत नामक दार्शनिक सिद्धांत आदि पर भिन्न-भिन्न अध्यायों के माध्यम से शोध परक चर्चा की है।

कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय से संबद्ध 'वसुधा डालमिया' ने 'फॉर्जिंग कम्युनिटी : द गुरु इन अ सेवेन्टीन्थ-सेंचुरी वैष्णव हेजियोग्राफी'[10] में संत चरित लेखन परंपरा में पुष्टिमार्गीय वार्ता-साहित्य व्याख्यायित किया है। अपने इस शोध में उन्होंने 17वीं सदी में चरित लेखन के संदर्भ में गुरु के अलौकिक स्वरूप निर्माण की पेशकश को उजागर किया है। उन्होंने 84 एवं 252 वैष्णवन की वार्ता में उद्धृत गुरु एवं वैष्णव भक्तों की इस अलौकिक छवि की प्रतिष्ठापना को लेखिका ने विशेष रूप से अभिव्यक्त किया है। उल्लेखनीय है कि लेखिका ने इस चरित लेखन के संदर्भ में करिश्मा के प्रयोग को विशेष रूप से रेखांकित किया है। ब्रज-भाषा में रचित उक्त संप्रदाय की रचना प्रक्रिया पर विविध भांति चर्चा करते हुए यहां वार्ता साहित्य की मौखिक परंपरा एवं उसके संकलन-संपादन के स्वरूप को स्पष्ट किया है।

इसी प्रकार 'मोनिका होर्स्टमेन' ने भी 'करिश्मा, ट्रांसफर ऑफ करिश्मा एण्ड कैनन इन नॉर्थ इंडिया भक्ति'[11] में विभिन्न सगुण एवं निर्गुण संप्रदायों पर चर्चा के साथ-साथ गौड़ीय संप्रदाय एवं वल्लभ संप्रदाय पर विस्तृत चर्चा की है। पुष्टिमार्ग में करिश्मा के प्रयोग एवं अलौकिक चरित्रों के निर्माण की पेशकश को भी उन्होंने रेखांकित किया है। उक्त संप्रदाय के स्वरूप एवं प्रक्रिया का विस्तृत विवेचन करते हुए उन्होंने वार्ता-साहित्य के अध्ययन के भिन्न-भिन्न कोण प्रतिपादित किए हैं।

उल्लेखनीय है कि अमेरिका के कोलम्बिया विश्वविद्यालय के शोधार्थी 'जस्टिन बेन-हैन' ने पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य पर गहनतापूर्वक शोध कार्य संपन्न किया है। अपने शोध कार्य 'हरिराय ज एनकॉम्पोसमेंट एंड रिनोवेशन ऑफ वल्लभाइट वार्ता ज'[12] सन् 2014 में प्रकाशित इस कार्य में उन्होंने वार्ता साहित्य के संदर्भ में हरिरायजी के भाव-प्रकाश एवं वार्ताओं के व्याख्या-विवेचन पर विस्तारपूर्वक जिक्र करते हुए वार्ता साहित्य के संदर्भ में उक्त टीका के महत्व एवं उपादेयता को उजागर किया है।

कनाडा के अथाबास्का विश्वविद्यालय के प्राध्यापक 'संदीप सारा' ने भी वल्लभ संप्रदाय एवं वार्ता साहित्य पर महत्वपूर्ण शोध कार्य किया है। 'द मूवमेंट ऑफ भक्ति अलग अ नॉर्थवेस्ट ऐक्सिस : ट्रेसिंग द हिस्ट्री ऑफ द पुष्टिमार्ग बिटवीन द सिक्सटीन्थ एण्ड द नाइनटीन्थ सेन्चुरीज'[13] में उन्होंने भक्ति आन्दोलन के एक प्रमुख संप्रदाय के रूप में उभरे वल्लभ संप्रदाय के उदय एवं प्रसार का शोधपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया है। पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य के हवाले लेखक ने गुजरात एवं राजस्थान में विशेष तौर पर प्रसारित इस संप्रदाय के विभिन्न सामाजिक-ऐतिहासिक पहलुओं पर प्रकाश डाला है। इसमें मुगल शासन के दौर में पंथ प्रसार के साथ-साथ इस मार्ग का इतिहास रेखांकित किया गया है। इस संदर्भ में आचार्य वल्लभ की प्रदक्षिणाओं, अष्टयाम सेवा-प्रकार, राजपूत सत्ता के संरक्षण आदि पर शोधपरक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। कहीं-कहीं लेखक का दुराग्रह भी व्याख्या के दौरान उजागर हुआ है। लेखक ने उक्त संप्रदाय के वार्ता साहित्य पर और भी कई शोधपरक आलेख लिखे हैं जिनमें संप्रदाय के साहित्यिक ट्रेण्ड्स एवं दार्शनिक परंपराओं के मद्देनजर पुष्टिमार्ग की चरित लेखन परंपरा एवं उसके उद्देश्यों को स्पष्ट किया है।

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि किस प्रकार भक्ति आंदोलन के एक प्रमुख संप्रदाय के रूप में उभरे 'वल्लभ संप्रदाय एवं उसकी साहित्य सृजन प्रक्रिया के संदर्भ में भिन्न-भिन्न दृष्टियों से वार्ता साहित्य पर शोध एवं अनुशीलन की पेशकश विश्व के विभिन्न देशों में होती रही है। उपर्युक्त विवेचन के माध्यम से संक्षेप में विदेशों में इस दिशा में हुए महत्वपूर्ण शोध-कार्यों को उजागर किया गया है। इन तथ्यों के आलोक में वार्ता साहित्य की व्यापक साहित्यिक-सांस्कृतिक परंपराओं की छवि को स्पष्ट किया गया है। साथ ही पुष्टिमार्ग की एप्रोच को आरंभिक आधुनिक युग के आगाज़ के रूप में देखना भी बेहद दिलचस्प है जो उपर्युक्त शोध कार्यों में उभर कर आता है।

संदर्भ

1. मीतल प्रभुदयाल, ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास, साहित्य संस्थान, मथुरा, 1974] पृ. 214
2. गुप्त गणपतिचन्द्र, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (द्वितीय खण्ड), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2013]. पृ. 325.
3. श्री गोकुलनाथ गोस्वामी, चौरासी वैष्णवन की वार्ता, (तीन जनम की लीला भावना वाली) महाराज श्री व्रजभूषण लालजी (संपा.), शुद्धाद्वैत एकडमी, कांकरोली, सं.-2055.
4. श्री गोकुलनाथ गोस्वामी, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता (भाग 1,2 एवं 3) तीन जनम की लीला भावना वाली। महाराज श्री व्रजभूषण लाल जी (संपा.), शुद्धाद्वैत एकेडमी, कांकरोली, सं.-2077.
5. हॉली जॉन स्ट्रेटन, द संक्टोरियन लॉजिक ऑफ द सूरदास की वार्ता, मोनिका थील होर्स्टमेन (संपा.), भक्ति इन द करेंट रिसर्च, बर्लिन, 1979-1982, पृ. 157-169.
6. श्री हरिरायजी गोस्वामी, श्री गोवर्धननाथजी के प्राकट्य की वार्ता, नारायणा, नई दिल्ली 2020.
7. हॉली ज. स्ट्रेटन ऑथर एंड अथोरिटी इन द भक्ति पोएट्री ऑफ नार्थ इंडिया, द जर्नल ऑफ एशियन स्टडीज, खण्ड-47, सं 02, मई, 1988, पृ. 269-290.
8. हॉली जन स्ट्रेटन, द अर्ली सूरसागर एंड द ग्रोथ ऑफ द सूर ट्रेडीशन, जर्नल ऑफ द अमेरिकन ओरिएंटल सोसाइटी, खंड 99, सं.-01 (जनवरी-मार्च, 1979), पृ. 64-72
9. चेरेविल्ले शारलट, कृष्णा गोपाला, राधा एंड द ग्रेट

गांईस, जे. एस. हौली तथा डोना मेरीवुल्फ (संपा.), बेकन प्रेस, बोस्टन, 1986, पृ. 1-12.'
10. विलियम्स मोनियर, हिन्दुइज्म, ई. एण्ड जे.बी. यंग एंड कम्पनी, न्यूयार्क, 1885, पृ. 145
11. मारिसन डब्ल्यू. चंद्राबर्न, एंड द चौरासी वैष्णवन की वार्ता, भक्ति स्टडीज, जी.एस. बेल, आई.कैम्बरका डी-वांडसन (संपा.), स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली, 1962,पृ. 251-262.
12. रेडिंगटन जेम्स डी., वल्लभाचार्य अन द लव गेम्स ऑफ कृष्णा, एम. जे. मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1987.
13. रेडिंगटन जेम्स डी. पॉलिटिक्स ऑफ वल्लभाइट भक्ति लिबरेशन, जर्नल ऑफ द अमेरिकन ओरिएंटल सोसाइटी, खण्ड 112, सं. 02 (अप्रैल-जून 1992), पृ.-287-294.
14. स्टीफन बाख, सोशियोलॉजी ऑफ रिलिजियन, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, जून 1994.
15. बार्ज रिचर्ड, द भक्ति संप्रदाय ऑफ वल्लभाचार्य, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्रा. लि., नई दिल्ली 1992.
16. डालमिया वसुधा फॉर्जिंग कम्युनिटी करिश्मा एण्ड कैनन : एस्से ऑन द रिलीजियस हिस्ट्री ऑफ द इंडियन सब कॉन्टिनेंट, वसुधा डालमिया, एंजेलिका मॉलिनर, मार्टिन क्रिस्टॉफ (संपा.), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली 2001, पृ. 129-154.
17. हार्टमैन मोनिका, 'करिश्मा ट्रांसफर ऑफ करिश्मा एंड कैनन इन नॉर्थ इंडिया भक्ति', करिश्मा एंड कैनन : एसेज ऑन द रीलीजियस हिस्ट्री ऑफ द इंडियन सब कॉन्टिनेंट वसुधा डालमिया, एंजेलिका मॉलिनर, मार्टिन क्रिस्टॉफ (संपा.), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली 2001, पृ. 171-182
18. हेन-वैन अस्टिन, हरिदयाल एन्काउन्टर एंड रिनावेशन ऑफ वल्लभाइट वार्ता ग्र. एम. ए. थीसिस, कोलंबिया यूनिवर्सिटी न्यूयॉर्क, 2014.
19. साहा संदीप, 'मूवमेंट ऑफ भक्ति अलंग अ नॉर्थ वेस्ट फ्रंटियर रीजन्स द हिस्ट्री ऑफ द नाइनटीन्थ सेंचुरीज,' इंटरनेशनल जर्नल ऑफ हिन्दू स्टडीज, 11.3 (2007): पृ. 299-318 2008 स्प्रिंगर।

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी)
नेताजी सुभाष आश्रम महाविद्यालय
सुइसा, पुरुलिया (प.बं.)
मो. 9593455822
ईमेल-nacharya2100@gmail.com

मधुर वाणी

वाक्-संयम तो बहुत कठिन माना गया है। अर्थयुक्त, चमत्कारपूर्ण बहुभाषण भी सम्भव नहीं होता। इसलिए चित्रभाषित्व और बहुभाषित्व परस्पर विरुद्ध माने जाते हैं--

वाक्-संयमो हि नृपते सुदुष्करतमो मतः।
अर्थवच्च विचित्रञ्च न शक्यं बहुच भाषितुम्।।

मधुर शब्दों से युक्त सुभाषित वाणी बहुतकर कल्याण करती है। वहीं कटु शब्दों से युक्त दुर्भाषित वाणी अनर्थ का हेतु हो जाती है। बाणों से बिंधा घाव फिर से भर जाता है तथा फरसे से कटा हुआ वन फिर से अंकुरित हो उठता है; किन्तु कटुवाणी से लगा भयंकर, दुर्वचनजन्य घाव फिर से नहीं भरता?

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम्।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम्।

कर्णि, नालीक, नाराच आदि भीषण बाणों को शरीर से निकाला जा सकता है। किन्तु मर्मभेदी कटु वचनरूपी शल्य निकाला नहीं जा सकता: क्योंकि वह तो हृदय के भीतर धँसा होता है -

कर्णिनालीकनाराचान् निर्हरन्ति शरीरतः।
वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः।।

कटु-वचनरूपी बाणी मुख से निकलकर दूसरों के मर्मस्थान पर ही चोट करती है, उससे आहत मनुष्य दिन-रात शोक में घुला करता है। अतः विद्वान् कभी दूसरों पर कटु-वचनों का प्रयोग नहीं करते।

कबीर काव्य में संगीत के स्वर

डॉ. प्रियंका

किसी भी देश की संस्कृति की झलक वहाँ के संगीत में महसूस की जा सकती है। भारत के संदर्भ में कहा जाता है कि यहाँ नारद मुनि (ऋषि) ने संगीत का शुभारंभ किया एवं यहाँ के निवासियों को नादब्रह्म के बारे में बताया। संगीत विज्ञान को गन्धर्व वेद कहा जाता है। यह सामवेद का एक उपवेद है। संगीत में जब काव्य को समाहित कर लिया जाता है तो उसकी गूंज कई युगों तक विद्यमान रहती है। काव्य और संगीत गतिशील कलाएँ हैं, अर्थात उच्चरित कविता और गायन का कोई स्थायित्व नहीं, उच्चारित होने के साथ-साथ ही दोनों का लोप हो जाता है। दोनों का आधार नाद है। जब नाद भाव प्रधान हो तो काव्य और जब नाद स्वर प्रधान हो तो संगीत कहलाता है।

भक्तिकाल जैसा कि नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि 'भक्ति के वर्चस्व का काल'। प्रस्तुत काल में सगुण निर्गुण दोनों ही धाराओं के उपासकों ने अपने काव्य को भक्ति रूप में प्रस्तुत किया। भक्ति भाव भज धातु से बना है। जिसका अर्थ भजना अर्थात अपने ईश्वर के नाम, रूप, रंग, लीलाओं का स्मरण-भजन करना। यदि उपासक संगीत के रंग में रंग कर भक्ति प्रकट करे तो उसकी भक्ति सरल व सुगम मार्ग से आराध्य का सान्निध्य प्राप्त करेगी। स्वयं भगवान श्रीकृष्ण गीता में नारद से कहते हैं -

"नाहं तिष्ठामि वैकुण्ठे योगीनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।"[1]

अर्थात् ईश्वर भी वहीं वास करते हैं, जहाँ उनके भक्त गान करते हैं। प्रस्तुत काल भक्ति और संगीत के वैभव का काल था, इसीलिए विद्वानों द्वारा इसे स्वर्णकाल की संज्ञा दी गई है। कबीर निर्गुण ब्रह्म के उपासक रहे। उनका ब्रह्म निर्गुण-निराकार था। कबीर ने भक्तिमय पदों को ब्रह्म के निकट संगीत सान्निध्य के साथ ही प्रस्तुत किया। उन्हें संगीत ज्ञान किसी गुरु की शरण में चाहे न प्राप्त हुआ हो किन्तु उनके काव्य में संगीत की सूक्ष्म बारीकियों का परिचय मिलता है। वीणा भारतीय शास्त्रीय संगीत का महत्वपूर्ण वाद्य यंत्र है। स्वयं भगवती सरस्वती वीणा के साथ विराजमान होती हैं। वीणा को एक वाद्ययंत्र के रूप में ही आरंभ से देखा जाता

रहा किन्तु कबीर वीणा का चित्रण मानव शरीर से जोड़ते हुए प्रस्तुत करते हैं वे कहते हैं -

"**जंत्री जंत्र अनुपम बाजे, ताको सबद गगन मैं गाजे।।टेक।।**

सुर की नालि सुरति का तूँबा, सतगुर साज बनाया।।

सुर नर गण गंध्रप ब्रह्मादिक, गुर बिन तिनहूँ न पाया।

जिभ्या ताँति नासिका करहीं, माया का मैण लगाया।।

गमाँ बतीस मोरणां पाँचो, नीका साज बनाया।

जंत्री जंत्र तजे नहीं बाजै, तब बाजै जब बावै।

अंतरि गति नहीं देखै नेड़ा, ढूँढ़त बन बन डोलै।।टेक।।"

अतः जिस प्रकार से वीणा के ऊपर सारिकाएँ मोम द्वारा एक स्थान पर स्थिर रहती हैं, इन सारिकाओं के ऊपर से तार दौड़ाए जाते हैं। तार को उतारने-चढ़ाने के लिए खूँटियां लगी रहती हैं। नीचे एक बड़ा सा तूंबा होता है जिसके द्वारा स्वर प्रतिध्वनित होता है। कबीर वीणा के इस स्वरूप को हठयोग साधना से जोड़ते हैं। मनुष्य शरीर रूपी वीणा में सुप्त स्वरों की नली तथा सुरति की तुम्बिका है: जीभ इसका तार है तथा नासिका खूंटी है, इसके तारों पर माया का मैन लगा हुआ है। बत्तीस दांत ही इस वीणा के बत्तीस गामां हैं जो गमक पैदा करने के कारण हैं। पांचों इन्द्रियां इन तारों को कसने वाली खूँटियाँ हैं। कबीर द्वारा मानव शरीर की ऐसी कल्पना अनोखी है। योग और संगीत के सामंजस्य को शास्त्रों में भी स्वीकार किया गया है। संगीत का घनिष्ठ संबंध योग साधना के अनहद अथवा निराकार रूप नाद से बताया गया है, जिसे भारंगदेव ने अत्यंत सुंदर ढंग से वर्णित किया है -

'**चैतन्यं सर्वभूतानां विवृतं जगदात्मना।**

नादब्रह्म तदानन्दम द्वितीमुपास्महे।'

संगीत व योग साधना व्यक्ति को एकाग्रचित्त बनाती है। सर्वप्रथम व्यक्ति को अपने मन पर नियंत्रण करना आवश्यक होता है, तत्पश्चात ही वह योग व संगीत की साधना करने में सक्षम होगा। संगीत के लिए आहत नाद को स्वीकृत किया गया है, किन्तु साधक जब तक अनहद नाद को महसूस नहीं करेगा तब तक उसकी साधना में गंभीरता नहीं आ सकेगी। अनहद नाद की अनुभूति ही साधक को संगीत साधना में अग्रसर करती है व ओंकार के माध्यम से ही अनहद नाद की अनुभूति की जा सकती है।" अभिव्यक्ति का वह क्रम जो एक अखंड नाद से आरंभ होता है, संगीत के स्थूलतम स्तर पर भी इन्द्रियगोचर हो सकता है और योगजन्य अनुभव के सूक्ष्म स्तरों में भी अवगत हो सकता है।" अर्थात् अनहद नाद की साधना संगीत व योग साधक के लिए आवश्यक है। कबीर इस संबंध में कहते हैं -

"**ससिहर सूर मिलावा, तब अनहद बेन बजावा।।**

जब अनहद बाजा बाजै, तब सांई संगि बिराजै।।"

कबीर अन्य स्थान पर कहते हैं--

"**जगत गुर अनहद किंगरी बाजे,**

तहाँ दीरघ नाद ल्यौ लागै।।टेक।।

त्री स्थान अंतर मृगछाला, गगन मंडल सींगी बाजे।"

कबीर के संगीत अनुभव का स्पष्टीकरण करते हुए दिनेशचन्द्र गुप्त लिखते हैं -"संत कवि कबीर तथा उनके अनुयायी अपने सिद्धांतों को काव्य-बद्ध कर संगीत के माध्यम से जनता तक पहुँचाते थे। संत काव्य के कवि मुख्यतः कबीर ने तो शास्त्रीय संगीत का विधिवत् अध्ययन किया था।" जहाँ विद्वानों द्वारा कबीर को अशिक्षित तक कह दिया गया इसका तर्क शायद कबीर की पंक्ति **मसि कागद छुयो नहिं कलम गह्यो नहिं हाथ** को आधार बनाकर दिया गया हो किन्तु दिनेशचन्द्र गुप्त जी का कथन कबीर को विद्वत व अनुभवी सिद्ध करता है।

शास्त्रीय संगीत में ख्याल गायन शैली उच्च स्तर की है। इस शैली का आरंभ मुस्लिम संस्कृति की देन है। हिन्दू संस्कृति में ध्रुवपद गायन शैली श्रेष्ठ रही किन्तु ख्याल शैली को जब दरबारों में गाया जाने लगा तो भारत में इस शैली को भी उच्च स्तर पर आसीन किया गया। **कबीर की निम्न रचना को ख्यालबद्ध आधारित रचना बताया गया है, जो कि राग दरबारी कानड़ा व एकताल में है -**

"**स्थाई--घूँघट के पट खोलरे तोहे राम मिलेंगे।**

अन्तरा--घट घट रमता राम रमैया कटुक वचन मत बोल रे।

रंग महल में दीप बरत है आसन से मत डोल रे।

कहत कबीर सुनो भाई साधो अनहद बाजत ढोल रे।।"

कबीर के पदों का गायन भीमसेन, कुमार गंधर्व, पंडित जसराज जैसे श्रेष्ठ संगीताचार्यों ने किया है तथा गुरुद्वारों में इनके पदों का नियमित सांगीतिक पाठ होता है। कबीर के पद राग आधारित हैं। उमेश जोशी जी कबीर के काव्य में राग के संबंध में लिखते हैं - "**कबीर के पदों में हमें 24 रागों का वर्णन मिलता है। वे गेयत्व की पूर्ण अभिव्यक्ति रखते हैं।**" कबीर ग्रंथावली के पदों में आसावरी, रामकली, केदारा, सोरठी जैसे शास्त्रीय रागों के नामों को शीर्षक बनाया गया है। आदिग्रंथ के अंतर्गत राग क्रमशः रागु गउड़ी, रागु आसा, रागु गूजर, रागु सोरठि, रागु धनासरी, रागु तिलंग, रागु सूही, रागु बिलावल आदि हैं। कबीर की एक साखी में संगीत के सात स्वर और रागों का उल्लेख इस प्रकार है -

"**सातों सबद जु बाजते, घरि घरि होते राग।**

ते मंदिर खाली पड़े, बैसण लागे काग।।"

संत कबीर के काव्य में रागों के नामों का उल्लेख भी मिलता है, जैसे कि -

"**रैसनां रसहि बिचारियें, सारंग श्रीरंग धार रे।"**

कबीर के पदों में रागों के संदर्भ में डॉ. दिनेशचन्द्र गुप्त लिखते हैं- "ऐसा जान पड़ता है कि कबीर ने पदावली की रचना गायन हेतु की है। पद शैली का संगीत से विशेष संबंध है। इस शैली में राग ताल का बंधन बांधना भी अत्यधिक सुगम है। पदों की प्रथम पंक्ति अन्य पंक्तियों की अपेक्षा छोटी होती है, जिसे स्थायी पद अथवा टेक कहते हैं। कबीर ने अपनी पद-शैली में टेक को मुख्य रूप में प्रधानता दी है।" टेक का प्रयोग संगीत के लिए ही काव्य में किया जाता है। टेक से अभिप्राय बार-बार उस पंक्ति के गायन से है। अनावश्यक शब्दों का प्रयोग गाते समय भावनाओं को गहरे रूप से प्रदर्शित करने में सहायक होता है। गुरु ग्रंथ साहिब में कबीर के उल्लेखित पदों में टेक के स्थान पर 'रहाउ' शब्द का प्रयोग हुआ है। उदाहरण स्वरूप कबीर की रचनाओं में प्राप्त टेक का प्रयोग -

"**अब तोहि जान न देहूं राम पियारे।**

ज्यूं भावे त्यूं होह हमारे।।टेक।।"

अन्य

"**आऊंगा न जाऊंगा, मरूंगा न जीऊंगा।**

गुरू के सबद में रमि रमि रहूंगा।।टेक।।"

कबीर जिस समाज के आम व्यक्ति को सजग व जागरूक करने में प्रयत्नशील थे, वह व्यक्ति बाह्याडम्बरों सामाजिक-धार्मिक कुरीतियों, मिथ्याचारों के मोह में फंसा हुआ था। वह वह समाज था जहाँ शासक वर्ग विलासी प्रवृत्ति की ओर धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा था। उसके पास आम जनता के लिए समय ही नहीं था। कबीर ने ऐसी दीन-दुःखी जनता में नवीन चेतना के संचार के लिए संगीतबद्ध काव्य को अपनाया जिससे वह उनके उपदेशों को आसानी से ग्रहण कर सकती थी। इसलिए कबीर काव्य में लोक संगीत की विविध शब्दावलियों का प्रयोग मिलता है। लोक संगीत आम जन का अपना

संगीत है। निराला लिखते हैं--"हृदय की अनुभूतियाँ तरंगायित होकर जब प्रकृति के मध्य बहने लगती हैं तो लोक संगीत का जन्म होता है।" यह सादगीपूर्ण संगीत है। इसकी कल्पना अथाह सागर से की जा सकती है। **जिस प्रकार सागर के गर्भ में असीमित रत्न छुपे हुए होते हैं उसी प्रकार लोक संगीत भी स्वयं में समाज की संस्कृति को छुपाए रहता है। इस प्रकार लोक संगीत का सामान्य अर्थ हुआ - लोगों का संगीत।** लोक संगीत में संत कवियों द्वारा दिए गए योगदान के बारे में कहा गया है -"लोक संगीत का विशेष प्रचार भ्रमणशील संतों द्वारा ही हुआ, जो प्रायः उच्च कोटि के आध्यात्मिक तथा प्रेमात्मक संगीत का गान करते थे। इस कारण ही इन कवियों ने अपने गीतों और पदों को जनसंगीत बनाकर एकतारे पर गाया।"

कबीर आम जन के कवि थे। आमजन के बीच में रहने वाले कवि में उसकी संस्कृति की झलक स्वतः ही स्पष्ट हो जाती है। कबीर ने समाज को एक नई दिशा देने में लोक संगीत को माध्यम बनाया। उमेश जोशी जी लिखते हैं - "कबीर की गणना हम संगीतज्ञ के रूप में करते हैं, क्योंकि उनके पदों से भारतीय संगीत को बड़ी भक्ति मिली है, और वे पद आम जनता की जबान पर चढ़ जाते हैं, और आम जनता उनको बड़े प्रेम से गाती है।" आम जनता के कंठ से वे ही गीत स्फुटित होते हैं जिनमें लोक साध्य रहता है। कबीर का निम्न पद उनके लोक संगीत के ज्ञान का परिचय देता है-

"ढोल मंदलिया बैल रबाबी, कऊवा ताल बजावै।

पहरि चोलना गादह नाचै, भैंसा निरति करावै।।

स्यंघ बैठा पान कतरै, घूंस गिलौरा लावै।

उंदरी बपुरी मंगल गावै, कछु एक आनंद सुनावै।।

कहै कबीर सुनहुं रे संतौ, गडरी परबत खावा।

चकवा बैसि अँगारे निगले, समंद आकासा धावा।।"

सावन के महीने में जब पेड़ों से झूले बांध कर स्त्रियां, कजरी और बच्चे आनंदित होते हैं तो वे अपने आनंद को हिंडोल राग का गान कर प्रकट करते हैं। कबीर के काव्य में इनका प्रयोग मिलता है वे कहते हैं कि -

"हरिया पारि हिंडोलना, मेल्या कंत मचाइ।

सोइ नारि सुलक्षणी, नित प्रति झूलण जाइ।।"

मंगलाचार मंगल कामना के लिए गाए जाते हैं कबीर जी का पद जिसमें वह मंगलाचार गा रहे हैं -

"दुलहनी गावहु मंगलाचार,

हम घरि आए हो राजा राम

भरतार।।टेक।।

तन रत करि मैं रत करिहूं, पंचतत्त बराती।

रामदेव मोरैं पाहुनैं आये मैं जोबन मैं

माती।।

सरीर सरोवर बेदी करिहूं, ब्रह्म बेद उचार।

रामदेव संगि भाँवरि लैहूं, धंनि भाग

हमार।।

सुर तेतीसूं कौतिग आये, मुनिवर सहस

अठ्यासी।

कहै कबीर हम ब्याहि चले हैं, पुरिश एक

अविनासी।।"

प्राचीन काल से ही आरती गायन समाज में परम्परागत रूप से प्रचलित है। पूजा संपन्न तभी मानी जाती है जब दीप जलाकर प्रभु की आरती गायी जाती है। सगुण भक्ति में आरती का विशेष महत्व है, अपने आराध्य की आरती गाना शुभ माना जाता है। संत कवियों ने भी प्रभु के स्मरण में आरती गायी है। कबीर आरती को इस तरह प्रस्तुत करते हैं कि शून्य में ही ईश्वर का ध्यान संभव है। सिद्धि में भी ईश्वर नहीं मिलता, अतः उसकी शरण में बने रहना ही उचित है। ज्ञान का तेल डालकर यदि हरिनाम की बाती का दीपक जलाया जाए तो शरीर में प्रभु का प्रकाश होता है। परमात्मा के संपर्क में पात्रों संगीतमय वादन बजे व अनहद ध्वनि छा गयी। कबीर जो कहते हैं कि हे प्रभु इसी में तुम्हारी परम आरती निहित है -

"सुंन संधिआ तेरी देव देवा कर अधपति आदि समाई।

सिध समाधि अंतु नही पाइआ लागि रहे सरनाई।।1।।

लेहु आरती हो पुरख निरंजनु सतिगुर पूजहु भाई।

ठाढा ब्रहमा निगम बीचारै अलखु न लखिआ जाई।।1।।रहाउ।।

ततु तेलु नामु कीआ बाती दीपकु देह उज्यारा।

जोति लाइ जगदीस जगाइआ बूझै बूझनहारा।।2।।

पंचे सबद अनाहद बाजे संगे सारिंगपानी।

कबीर दास तेरी आरती कीनी निरंकार निरबानी।।3।।"

कबीर के काव्य में सूफी संगीत का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। गजल, कव्वाली, रेख्ता, स्वांग, बारहमासा आदि सूफी गायन शैलियों का प्रयोग कबीर काव्य में हुआ है। फारसी व उर्दू भाषा में प्रचलित प्रेम संगीत जो कविता के रूप में होता है, उसे संगीत में गजल कहा जाता है। यह प्रभाव संत कबीर पर सूफी संगीत का कहा जा सकता है। कबीर की गजल रचना इस प्रकार है -

"हमन है इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या?

रहें आजाद या जग से, हमन दुनिया से यारी क्या?

जो बिछुड़े हैं पियारे से भटकते दर बदर फिरते

हमारा यार है हम में, हमन को इंतजारी क्या?

खलक सब नाम अपने को बहुत कर सिर पटकता है

हमन गुरनाम साँचा है, हमन दुनिया से यारी क्या?

न पल बिछुड़े पिया हम से, न हम बिछुड़े पियारे से

उन्हीं से नेह लागी है, हमन को बेकरारी क्या?

कबीरा इश्क का माता, दुई को दूर कर दिल से

जो चलना राह नाजुक है, हमन सिर बोझ भारी क्या?"

कबीर के समय नट और नाटक शब्द प्रचलित थे, इतना ही नहीं नट लोग भाँति-भाँति के रूप बदलकर नाच-गान के साथ खेल तमाशे भी करते थे। कबीर ने नट नाटक के साथ मांदल नामक अवनद्ध वाद्य की भी चर्चा की है -

"कहै कबीरा नट नाटक थाक्या,

मंगला कौन बजावै।"

कबीर का अन्य स्वांग -

"बाजीगर डंक बजाई। सब खलक तमाशा आई।

बाजीगर स्वांग सकेला। अपने रंग रवै अकेला।।"

इनकी रचनाओं में ढोल, तुरई, दमामा, बंसी, रबाब तथा शहनाई आदि वाद्य यंत्रों का उल्लेख मिलता है। युद्ध भूमि में बजाए जाने वाले वाद्य 'दमामा' और 'निशान' का वर्णन कबीर काव्य में हुआ है, जिससे यह भी सूचित होता है कि तत्कालीन समाज में इन वाद्यों का प्रयोग था। इनकी ध्वनि वीरों में उत्साह का संचार करती थी, वैसे वीर नगाड़े की ध्वनि सुनकर युद्ध भूमि में डटकर लड़ जाते थे कबीर इसका उल्लेख करते हुए-

"गगन दमामा बाजिया, पड्या निसानैं घाव।

खेत बुहारया सूरिवै, मुझ मरणें का चाव।।"

इसी प्रकार कबीर ने मंगल सूचक वाद्यों का भी उल्लेख किया है, जैसे शहनाई और नगाड़े का

प्रयोग। इन्हें नौबति बजाना कहते थे। जिसका उल्लेख कबीर करते हैं -

"कबीर नौबति आपणी, दिन दस लेहु बजाइ।"[6]

"जिनके नौबति बाजति मैंगल बंधते बारि।।"[7]

इनके अतिरिक्त ढोल, डुगडुगी, भेरी, तुरही का उल्लेख भी कबीर काव्य में मिलता है -

"ढोल दमामा दड़बड़ी, सहनाई संगि भेरि।
औसर चल्या बजाइ करि, है कोई राखै फेरि।।"[8]

"गगन गरजि मन सुंनि समानां, बाजे अनहद तूरा।"[9]

"गांवणहारा कदे न गावै, अणबोल्या नित गावै।
नटवर पेशि पेशनां पेशै, अनहद बेन बजावै।।"[10]

मंदल और रबाब का प्रयोग -

"धौल मंदलिया बैल रबाबी, कऊवा ताल बजावै।"[11]

संत कबीर की भाषा में जनसाधारण की ध्वनि मुखर होती है। तत्कालीन समय में ब्रज, अवधी, भोजपुरी, खड़ीबोली, पंजाबी आदि भाषाओं का बोलबाला था। कबीर ने अपनी वाणी में इन सभी भाषाओं के समन्वित रूप को अपनाया। जिसे सधुक्कड़ी कहा गया। भाषा के इस मिश्रित रूप से कबीर की भाषा में संगीतात्मकता को अधिक बल मिला, क्योंकि संगीत की स्वर-ताल योजना के लिए शब्दों का मनमाना व्यवहार निश्चय ही संगीतज्ञों के लिए सुविधाजनक सिद्ध होता है। कबीर ग्रंथावली पर राजस्थानी, ग्रंथ साहिब पर पंजाबी तथा बीजक पर भोजपुरी का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। यह प्रभाव मात्र कबीर की भाषा पर ही नहीं बल्कि अन्य सभी संत कवियों की भाषा पर दृष्टिगोचर होता है। शब्दों की ऐसी लचीली रूप रचना काव्य को संगीत के निकट लाती है। कबीर काव्य में पंजाबी भाषा की झलक इस प्रकार प्रकट होती है -

"अंखड़ियाँ झाईं पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड़्या, राम पुकारि पुकारि।।"[12]

भाषा में संगीत सुलभ कोमलता उपादान के लिए कर्कश तथा कर्णकटु अक्षरों एवं वर्णों का बहिष्कार अनुकूल सिद्ध होता है। कबीर ने भाषा में मधुर शब्द विन्यास के लिए कर्णकटु शब्दों से काव्य को बचाने का प्रयत्न किया है। उदाहरण स्वरूप दक्षिण के स्थान पर दखिण शब्द का प्रयोग संगीत के अधिक निकट है -

"उत्तर दखिण के पंडिता, रहे बिचारि बिचारि।।"[13]

कबीर की भाषा में संयुक्त वर्णों का अभाव है। इससे भाषा में कोमलता एवं मधुरता उत्पन्न होती है। उदाहरण स्वरूप- मनुष्य के स्थान पर मानिश शब्द का प्रयोग संगीतोपयोगी है

"जिनि मानिश तैं देवता, करत न लागी बार।।"[14]

कबीर के काव्य में रे, री, अरी, हो, एजी, अजी आदि निरर्थक शब्दों का प्रयोग मिलता है। यह शास्त्र की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं होता किन्तु संगीत की दृष्टि से अधिक उपयोगी होता है। उदाहरणस्वरूप -

"या ठौइन्य के लरिका पाँच रे, निस दिन मोहि नचावैं नाच रे।।"[15]

कबीर के काव्य में व्यंजन में स्वर संयोग की अनावश्यक प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। इससे व्यंजन में संगीतात्मकता उत्पन्न होती है। उदाहरणस्वरूप- यहाँ बालपन के स्थान पर बालापन का प्रयोग हुआ है

"बारह बरस बालापन खोयो, बीस बरस कछु तप न कर्यो।"[16]

संत भक्त जन मानस को अपने उपदेश इकतारा, सारंगी, डफ पर गा-गाकर दिया करते थे। शब्द जब संगीत का सान्निध्य प्राप्त कर लेते हैं तो उनकी आयु में वृद्धि हो जाती है, तत्कालीन जनमानस की स्मृति पर ये उपदेश इस प्रकार छा जाते थे कि संत भक्त जहाँ कहीं भी गा रहा होता, तो लोग अपना काम-धाम छोड़ कर दौड़-दौड़ भक्त को घेर एकचित्त हो इन्हें सुना करते।

संत कबीर को कई विद्वानों ने अशिक्षित कहा, किन्तु वे असाधारण प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से जो चमत्कार कर दिखाया, वह अप्रतिम है। भक्तिकाल से आते-आते वर्तमान समय में आम-जन से लेकर विद्वतवर्ग द्वारा संत कबीर के पदों-साखियों का निरंतर गान होता आ रहा है। देश के बड़े-बड़े संगीतज्ञ संत कबीर के पदों का गायन करते चले आ रहे हैं। काव्य की जब संगीतमय साधना करनी हो, और वह भी भारतीय संगीत के रागों में बद्ध कर, तो संगीतज्ञ को कितने लंबे समय तक उसका अभ्यास करना होगा। संत कबीर के काव्य को बड़े-बड़े संगीतज्ञों ने साधा और उन्होंने उसके अंदर छिपे रस को व्यक्त किया। अतः संत कबीर ने संगीत की शिक्षा गुरु की निगरानी में भले ही प्राप्त न की हो, किन्तु उनके काव्य में संगीत मौजूद है। इसका एक कारण यह मान सकते हैं कि तत्कालीन समाज संगीतमय समाज था। शासक वर्ग की ओर से संगीत व संगीतकारों को प्रोत्साहन प्राप्त था। आमजन से लेकर शासक वर्ग सभी संगीत की भाषा ही समझते थे। हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति के समन्वय से इस समय संगीत के नए-नए रूप विकसित हो रहे थे। संत कबीर को संगीत का ज्ञान अवश्य रहा होगा इसीलिए उनके काव्य में संगीत का सामंजस्य व्याप्त है। कबीर के इसी संगीत ज्ञान को देखते हुए उमेशचन्द्र जोशी जी कहते हैं---"अकबर के काल की तीसरी देदीप्यमान ज्योति कबीर हैं, इन्होंने भी अपनी साखियों द्वारा भारतीय संगीत की अतुल सेवा की है।"[17]

संदर्भ

1. संगीतायन, अमलदाश शर्मा, आर्य प्रकाशन मण्डल, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1984, पृ.--15
2. कबीर ग्रंथावली, श्याम सुंदरदास, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, बीसवां संस्करण, पद 195, पृ.--115
3. कबीर दृष्टि प्रतिदृष्टि, संपादक डॉ. राजेन्द्र टोकी, विमला बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण--2012, पृ--162
4. कला का सौन्दर्य, खण्ड एक, संपादक : यतीन्द्र मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण--2008, लोक साधना के समर्थ उपाय के रूप में संगीत, प्रेमलता शर्मा, पृ.--75
5. कबीर ग्रंथावली, राग रामकली, संख्या--173, श्याम सुंदरदास नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, बीसवां संस्करण, पृ.--109
6. वही, संख्या --153, पृ.--103
7. भक्तिकालीन काव्य में राग और रस, डॉ दिनेशचन्द्र गुप्त, भारती प्रकाशन लखनऊ, प्रथमावृत्ति--1970 ई., पृ.--3
8. ख्याल गायन शैली : विकसित आयाम, सत्यवती शर्मा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण--1957, पृ.--105
9. भारतीय संगीत का इतिहास, उमेश जोशी, मानसरोवर प्रकाशन महल, फीरोजाबाद, प्रथम संस्करण--1957, पृ.--251,
10. कबीर ग्रंथावली, श्याम सुंदरदास, नागरी प्रचारिणी सभा, बीसवां संस्करण, विरहिणी को अंग, साखी संख्या--4, पृ.-16
11. भक्तिकालीन काव्य में राग और रस, डॉ. दिनेशचन्द्र गुप्त, भारती प्रकाशन लखनऊ, प्रथमावृत्ति--1970 ई., पृ.--154
12. वही
13. संत वचनावली, संपादक-डॉ. रामेश्वर प्रसाद सिंह, अनुपम प्रकाशन, पटना, संस्करण--1986, पृ.-22
14. वही, पृ.- 37
15. कला का सौन्दर्य, खण्ड एक, संपादक : यतीन्द्र मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2008, लोक-साधना के समर्थ उपाय के रूप में

संगीत प्रेमलता शर्मा, पृ.--74
16. भक्तिकालीन काव्य में राग और रस, डॉ. दिनेशचन्द्र गुप्त, भारती प्रकाशन लखनऊ, प्रथमावृत्ति--1970 ई., पृ.--3
17. भारतीय संगीत का इतिहास, उमेश जोशी, मानसरोवर प्रकाशन महल, फीरोजाबाद, प्रथम संस्करण--1957, पृ.--252
18. कबीर ग्रंथावली, श्याम सुंदरदास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, बीसवाँ संस्करण, राग गौड़ी, संख्या--12, पृ.--72
19. वही, सुमिरण कौ अंग, साखी संख्या--5, पृ.--64
20. वही, राग गौड़ी संख्या--1, पृ.--99
21. आदि श्री ग्रंथ साहिब, चौथी सैंची, शिरोमणि प्रबंधक कमेटी, भगत कबीर जी की--5, पृ.--599--600
22. हिन्दी गजल की भूमिका डॉ. शिवशंकर मिश्र, लक्ष्मी प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण--2007, पृ.--219
23. कबीर ग्रंथावली,नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण संवत 2003 वि., पृष्ठ--219
24. संगीत एवं लोकनाट्य परंपरा, रामनारायण अग्रवाल, प्रथम संस्करण--1976, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, पृ.--22
25. कबीर ग्रंथावली, श्याम सुंदरदास, नागरी प्रचारिणी सभा,वाराणसी, बीसवां संस्करण, सुमिरन कौ अंग, साखी संख्या--6, पृ.--54
26. वही चितावणी कौ अंग, साखी संख्या--1, पृ.--16
27. वही, साखी संख्या--2
28. वही, साखी संख्या--3
29. वही, पदावली, राग गौड़ी, संख्या-7, पृ.--71
30. वही, पदावली, राग रामकली, संख्या-162, पृ.-106
31. वही, पद 12, पृ.--72
32. कबीर ग्रंथावली, संपादक श्याम सुंदरदास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, बीसवां संस्करण,बिरह कौ अंग 22, पृ.--7
33. वही, परचा कौ अंग, पृ.--9
34. वही, गुरुदेव कौ अंग, पृ.--1
35. वही, पृ.--125
36. वही, पृ.--127
37. भारतीय संगीत का इतिहास, उमेश जोशी, मानसरोवर प्रकाशन महल, फीरोजाबाद, प्रथम संस्करण--1957, पृ.--250

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
माउंट कार्मेल कॉलेज बैंगलौर
संपर्क : 7290859844

ऐसे बहुत से शेर हैं जिनका दूसरा मिसरा इतना मशहूर हुआ कि लोग पहले मिसरे को तो जानते ही नहीं। ऐसे ही चन्द उदाहरण यहाँ पेश हैं -

ऐ सनम वस्ल की तदबीरों से क्या होता है?
वही होता है जो मंजूर-ए-खुदा होता है।
- मिर्ज़ा रज़ा बर्क़

चल साथ कि हसरत दिल-ए-मरहूम से निकले,
आशिक़ का जनाज़ा है ज़रा धूम से निकले।
[illegible]

क़ैस जंगल में अकेला ही मुझे जाने दो,
खूब गुज़रेगी, जो मिल बैठेंगे दीवाने दो।
- मियाँ दाद ख़ां सय्याह

शौक़ से [illegible] इशारा सर-ए-महफ़िल जो किया,
लड़ने वाले क़यामत की नज़र रखते हैं।
- माधव राम जौहर

मीर अमदन भी कोई मरता है?
जान है तो जहान है प्यारे।
- मीर तक़ी मीर

दिल के फफोले जल उठे सीने के दाग़ से,
इस घर को आग लग गई, घर के चराग़ से।
- महताब राय ताबां

शब को मय ख़ूब पी, सुबह को तौबा कर ली,
रिंद के रिंद रहे हाथ से जन्नत न गई।
- जलील मानिकपुरी

ईद का दिन है, गले आज तो मिल ले ज़ालिम,
रस्म-ए-दुनिया भी है, मौक़ा भी है, दस्तूर भी है।
- क़मर बदायूंनी

ये जब्र भी देखा है तारीख़ की नज़रों ने,
लम्हों ने ख़ता की थी, सदियों ने सज़ा पाई।
- मुज़फ़्फ़र रज़्मी

न मरेगा कोई मेरे लिए न मरूंगी मैं किसी के लिए : ललद्यद

डॉ. शिबन कृष्ण रैणा

कश्मीरी-साहित्य में सन्त कवयित्री ललद्यद को वही स्थान प्राप्त है, जो हिन्दी में कबीर को है। इस महान कवयित्री का नाम आज भी कश्मीर में बड़े आदर के साथ लिया जाता है। वस्तुतः, कश्मीरी-साहित्य की सुस्पष्ट परम्परा इसी कवयित्री से मिलती है। इनका समूचा काव्य सांस्कृतिक पुनर्जागरण, मानव-कल्याण तथा सामाजिक पुनरुत्थान की दार्शनिक अभिव्यक्ति है, जिसमें भक्ति, ज्ञान, प्रेम और सदाचार की अनुपम रसधारा प्रवाहित मिलती है।

ललद्यद को कश्मीरी जनता ललेश्वरी, ललयोगेश्वरी, लला, ललारिफा आदि नामों से जानती है। उसका जन्म कश्मीर में पाम्पोर के निकट सिमपुरा गाँव में एक ब्राह्मण किसान के घर में हुआ था। यह गाँव श्रीनगर से लगभग नौ मील की दूरी पर स्थित है। तत्कालीन प्रथानुसार ललद्यद का विवाह उसकी बाल्यावस्था में ही उसी गाँव के एक प्रसिद्ध ब्राह्मण-घराने में हुआ। पति का नाम सोन-पण्डित बताया जाता है। विवाह के पश्चात ससुराल में ललद्यद को अपनी सास की कटु आलोचनाओं तथा यन्त्रणाओं का शिकार होना पड़ा। कहते हैं कि ललद्यद की निर्दय सास उसे कभी भरपेट खाना तक नहीं देती थी और नौकरों की तरह काम लेती थी। समय बीतता चला गया और ललद्यद यह सब-कुछ सहती गयी। इस समय तक ललद्यद की अन्तर्दृष्टि दैहिक वांछाओं की संकीर्ण परिसीमाओं को लाँघकर असीम में केन्द्रित हो चुकी थी। कालान्तर में कुलगुरु श्रीसिद्धमोल ने उसे धर्म, दर्शन, ज्ञान, योग आदि से सम्बद्ध विभिन्न ज्ञातव्य रहस्यों से अवगत कराया तथा उस सन्त-कवयित्री के गुरु होने का अपूर्व गौरव प्राप्त किया।

अपनी पत्नी में प्रबल विरक्ति की भावना देखकर एक बार सोन पण्डित ने सिद्धमोल से प्रार्थना की कि वे ललद्यद को ऐसी शिक्षा दें, जिससे उसे सांसारिकता की ओर प्रवृत्ति हो। कहते हैं इसपर सिद्धमोल स्वयं ललद्यद के घर गये। उस समय सोन-पण्डित भी वहीं मौजूद था। इससे पूर्व कि गुरुजी ललद्यद को सांसारिकता का पाठ पढ़ाते, एक गम्भीर चर्चा छिड़ गई। चर्चा का विषय था : 1. सभी प्रकाशों में कौन-सा

प्रकाश श्रेष्ठ है? 2. सभी तीर्थों में कौन-सा तीर्थ श्रेष्ठ है? 3. सभी परिजनों में कौन-सा परिजन श्रेष्ठ है? और, 4. सभी सुखद वस्तुओं में कौन-सी वस्तु श्रेष्ठ है? सर्वप्रथम सोन-पण्डित ने अपनी मान्यता इस प्रकार व्यक्त की : 'सूर्य-प्रकाश से बढ़कर और कोई प्रकाश नहीं, गंगा के समान और कोई तीर्थ नहीं, जेन के समान श्रेष्ठ कोई परिजन नहीं तथा पत्नी के समान और कोई सुखद वस्तु नहीं।' गुरु सिद्धमोल का कहना था कि 'नेत्र-प्रकाश के समान और कोई प्रकाश नहीं, घुटनों, यानी स्वावलम्बन के समान और कोई तीर्थ नहीं तथा भाई के समान और कोई परिजन नहीं.....।' योगिनी ललद्यद ने अपने विचार इस प्रकार रखे : 'मैं, अर्थात आत्मज्ञान के समान कोई प्रकाश नहीं, जिज्ञासा के समान कोई तीर्थ नहीं, ईश्वर के समान कोई परिजन नहीं तथा ईश-भय के समान कोई सुखद वस्तु नहीं।' ललद्यद के इस उत्तर को सुनकर सिद्धमोल एवं सोन-पण्डित अवाक् रह गये।

सुनते हैं कालान्तर में ललद्यद ने वस्त्रों की उपेक्षा कर दी। उसकी आचार-मर्यादा कृत्रिम व्यवहारों से बहुत ऊपर उठकर समष्टि में लीन रहने लगी। अब वह निर्वस्त्र नाचने-घूमने लगी। वह पुरुष उन्हीं को मानती जो भगवान से डरते हों। शेष के सामने नग्नावस्था में घूमने-फिरने में शर्म कैसी? एक दिन ललद्यद को प्रसिद्ध सूफी संत मीर सैयद हमदानी सामने से आते हुए दिखाई पड़े। उसने तत्क्षण अपनी देह को आवृत करने का प्रयास किया। निकट पहुँचने पर सन्त हमदानी ने पूछा : ऐ देवी, तू ने अपनी देह की यह क्या हालत बना रखी है, तुझे नहीं मालूम कि तू नंगी है?' ललद्यद ने सकुचाते हुए उत्तर दिया : 'हे खुदा-दोस्त, अबतक मेरे सामने से केवल औरतें ही गुजरती रहीं, पुरुष अथवा आँखवाला उनमें कोई भी न था। आप मुझे मर्द खुदा तथा पहुँचे हुए फकीर दिखाई पड़े, इसलिए अपनी देह आपसे छिपा रही हूँ।' इस घटना का एक अन्य प्रसंग इस प्रकार मिलता है : कहते हैं कि जब ललद्यद ने सन्त हमदानी को दूर से अपनी ओर आते देख लिया, तब वह चिल्लाती हुई दौड़ पड़ी कि आज मुझे असली पुरुष के दर्शन हुए, और वह दौड़ती हुई एक बनिया के पास गई और उससे तन ढकने के लिए वस्त्र मांगे। बनिया के इन्कार करने पर वह पास के एक नानबाई के जलते हुए तन्दूर में कूद पड़ी। मुसलिम सन्त पूछताछ करते वहाँ पहुँचे गये और आवाज दी : 'ऐ ल्ला, बाहर आ जाओ, देखो तो कौन खड़ा है!' कहते हैं, उसी क्षण ललद्यद सुन्दर दिव्य-वस्त्र धारण कर तन्दूर से प्रकट हो गई!

ललद्यद के कोई सन्तान नहीं हुई थी। प्रकृति ने उसे इस बन्धन से मुक्त ही रखा था। कवयित्री ने स्वयं एक स्थान पर कहा है : 'न जायस, न ग्यास, न खेयम हेंद्य न शोंठ।' अर्थात्, 'न मैं प्रसूता बनी, न गर्भिणी, और न प्रसूता का आहार ही ग्रहण किया।' विपरीत पारिवारिक परिस्थितियों ने ललद्यद को एक नई जीवनदृष्टि प्रदान की। परिणामस्वरूप, उसने अपनी समस्त अभीष्ट की पूर्तियों को व्यापक रूप दिया तथा लोकानुभूति से प्राप्त चिर-अन्वेषित सत्य को ज्ञान एवं भक्ति की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्तियों में साकार कर दिया। ये स्फुट, किन्तु सरस अभिव्यक्तियाँ 'वाक्' कहलाती हैं। कबीर की भाँति ललद्यद ने भी 'मसि-कागद' का प्रयोग नहीं किया। ये वाक् प्रारम्भ में मौखिक परम्परा में ही प्रचलित रहीं तथा बाद में इन्हें लिपिबद्ध किया गया। चार-चार चरणों की ये स्फुट वाक् लययुक्त हैं, जिनमें कवयित्री ने जीवन-दर्शन की गूढ़तम गुत्थियों को सहज-सरल रूप में पिरो दिया है। ललद्यद के कृतित्व का परिचय पहली बार 'तारीख-ए-कश्मीर' में मिलता है। इसके पूर्व तक यह अपरिचित ही रही। श्रीवर की 'जैनराजतरंगिणी' तथा जोनराज की 'जैनतरंगिणी' में भी उसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। वस्तुतः 18वीं शती के पूर्वार्द्ध में उस आदि कवयित्री के कृतित्व की ओर जनता का ध्यान गया और उसका विधिवत मूल्यांकन होने लगा। इस दिशा में सर्वप्रथम

ग्रियर्सन महोदय का नाम लिया जा सकता है, जिन्होंने कश्मीर के विद्वान महामहोपाध्याय पण्डित मुकुन्दराम शास्त्री की सहायता से ललद्यद के 106 वचन (वाक्) संकलित किये तथा उन्हें 'ललवाक्यानि' नामक पुस्तिका के अन्तर्गत सम्पादित किया। यह पुस्तिका सन् 1920 ई. में रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन से प्रकाशित हुई है। जम्मू एवं कश्मीर राज्य की 'कल्चरल अकादमी' ने सन् 1961 ई. में ललद्यद के लगभग 135 वाक् एक संग्रह के अन्तर्गत प्रकाशित किए हैं। इन पंक्तियों के लेखक ने भी इस महान कवयित्री के वाखों/पदों का अनुवाद सहित एक संग्रह सम्पादित किया है जो भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ से प्रकाशित हुआ है।

ललद्यद के वाक्- साहित्य का मूलाधार धर्म, दर्शन और भक्ति है। प्रत्येक वाक्/वाख दार्शनिक चेतना का आगार है। इन लयबद्ध वाखों पर मुख्यतः शैव, वेदान्त एवं सूफी-दर्शन की छाप स्पष्टतया परिलक्षित होती है। कवयित्री ने बड़ी खूबी के साथ अपनी सत्यनिष्ठ आन्तरिक अनुभूतियों को उपयुक्त दार्शनिक-धार्मिक पद्धतियों के सन्दर्भ में मर्मस्पर्शी वाक् में ढाला है। धर्म-दर्शन सम्बन्धी तथ्यों की प्रधानता के साथ-साथ इन वाखों में काव्यात्मक सौन्दर्य की गहनता भी विपुल मात्रा में देखने को मिलती है। शंकर के अद्वैत का ललद्यद ने पूर्ण सहृदयता के साथ निरूपण किया है। सकल सृष्टि में जो गोचर है, वह परमात्मा का ही व्यक्त रूप है। वह मुझ में समाया हुआ है तथा मुझसे अलग नहीं है। उसे ढूंढने के लिए मन की एकाग्रता, लगन एवं त्याग की आवश्यकता है। कुत्सित स्वार्थ, अहं आदि का विसर्जन भी अनिवार्य है। इस प्रसंग में ललद्यद का यह प्रसिद्ध वाक् दृष्टव्य है : "लल बु द्रायस लोलरे, छांडान लूजिअस दुयन क्योह राथ। वुछुम पंडित पननी गरे, सुय मे रॉटमस न्यछतुर त साथ।"

अर्थात 'मैं उस परमशक्ति को ढूंढने के लिए घर से निकल पड़ी। उसे ढूंढते-ढूंढते रात-दिन बीत गये, पर वह न मिले। अन्त में पाया कि वह तो मेरे ही घर अथवा हृदय में विराजमान है। बस, तभी से मेरे परमात्म-साधना का उचित मुहूर्त निकल आया।' एक और वाक् इस प्रकार है : **'रंगस मंज ब्योन-ब्योन लबखुन सोरूय चालख दुख तअ सोख, चख, शिश त वार मन मंज गालख अदअ डेशख शिव सुन्द मोख।'**

अर्थात् 'इस संसार-रूपी रंगशाला में तुझे भिन्न-भिन्न प्रकार की आकृतियाँ देखने को मिलेंगी। वस्तुतः ये सभी एक ही हैं, अतः इनके वास्तविक रूप को ढूंढ। जब तक तू इसके लिए अपने मन से सुख-दुःख, घृणा, बैर आदि को गला नहीं देता, तब तक तुझे शिवमुख के दर्शन नहीं होंगे।' ललद्यद ने धर्म के नाम पर प्रचलित मिथ्याचारों, बाह्याडम्बरों तथा विडंबनाओं का खुलकर खण्डन किया है। कबीर की भाँति उसने हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनों को खरी-खोटी सुनाई है। ललद्यद के अनुसार, धर्म का वास्तविक अर्थ है मन की शुद्धता। दरअसल, यही शुद्धता हमें परमार्थ की ओर ले जाती है।

ललद्यद का जन्मकाल विद्वानों के बीच विवाद का विषय बना हुआ है। अधिकांश विद्वानों की धारणा है कि उस कवयित्री का जन्म 14वीं शती के तीसरे-चौथे दशक में हुआ था। उसकी मृत्यु-तिथि भी अनिश्चित है। केवल इतना कहा जाता है कि जब ललद्यद ने प्राण त्यागे, तब उसकी देह कुन्दन के समान दमक उठी। यह घटना 'बिजबिहारा' में हुयी बताई जाती है। विद्वानों का अनुमान है कि ललद्यद सन् 1377 ई. तक जीवित थी।

खेद है कि ललद्यद का कश्मीर में उनकी प्रतिष्ठानुकूल न कोई स्मारक और न ही कोई मंदिर मिलता है। संभवतः कश्मीर की इस प्रातः स्मरणीय योगिनी के लिए जीवन-मरण एक-समान थे। तभी तो उसने कहा था : 'मरेम न कांह तअ मरअ न कांसी' यानी न मरेगा कोई मेरे लिए और न ही मरूंगी मैं किसी के लिए।'

2/537 अरावली विहार,
अलवर 301001
मो. 8209074186

Quest for Truth

Dr. B. D. Mundhra

Truth and Spirituality

God does not play dice with the universe", says Albert Einstein.
It's true that Einstein never accepted quantum mechanics and of course He won a Nobel Prize in 1921 for describing the photoelectric effect, a phenomenon that led to the development of quantum mechanics. So I also like to quote "Not only does God play dice but... he sometimes throws them where they cannot be seen." as Stephen Hawking puts it. World is mysterious and there is nothing more mysterious in science now than Quantum Physics.

From the earliest days of civilization, the human race has been in a constant quest for Truth and the Reality behind our Nature and our cosmos. Man started by worshipping the various Forces of Nature like Water, Fire, Sun, Mother earth and personified them as 'devi's' and 'devtas. But gradually man felt that behind them there is bigger entity which is giving these Forces of Nature their true power. But what is the source of this power? From where are they getting their power and direction? From the Vedas, we get to learn the prayers of different 'devi's' and the 'devatas' and the hymns to pay obeisance to them all for the benefit of mankind.

There is nothing more sacred than knowledge says Bhagavat Gita. There is knowledge that resides on the surface of the world in the form of language and words, in comparison which in computer domain referred as mere Graphic User Interface (GUI). We see this on the screens, on the surface. The reality is, there is a machine and binary language that exist much deeper which caused these images and letters appear on the

monitor screen. In the same way there is life and behind it an abstract level language of thoughts that is originated in consciousness. Even subtler than that there resides a flow of knowledge, may be from cosmic consciousness. There exists a layer of fabric of secrets of nature, there exists a layer of pure wisdom, there exists an omnipresent awareness, there exists an amazing plane where past-present-future are subsets and meet in one place, there exists a plane where divine powers leave their signature anonymously, there lies a plane like internet, in spiritual realms too. That is called Brahma in Vedas. He is the true cosmic knowledge, where subtlety is common and is believed that He created the dictionary of life, all events defined, cosmic plan executed.

Our Historical and Classical Tomes

When we read the Aranyaka and the Upanishads, there are discussions on the ultimate entity - the Brahma. Brahma was considered as a form of consciousness without a tangible form i.e. 'nirakar'. Concomitant with the same, we draw our inferences from the Atharva-Veda and the other Shastras like the Tantrashastra etc. By the way, we also read in the Gita that 'nirakar brahma' is personified in Bhagwan Krishna. When required, he can become infinite. The Gita also declares that Brahma is everywhere and all the entities of this world and cosmos including time and space emanates from HIM and is ingrained in HIM. He is all-pervading. But for a four-dimensional creation like man, he personifies himself. If so required by a bhakta or a devotee he can emerge from a stone pillar to save his devotee and make his omnipresence felt. When the devotee comes with all intensity, and prays with his feelings, Lord Narsimha can come out of a stone pillar to save his devotee from distress. This is the story of Prahlad. Many such stories of personification of God are spread across the *Puranas*.

The Concept of Brahma

Running parallel to the above philosophy, we have the atheist philosophy of the Sankhya, Charvaka, Buddha and Mahaveer. Again, the concept of *'Brahma'* is mentioned by the *Acharyas* like Sri Shankara where he declared himself as *Chidanandarupa Shivoham Shivoham* in the *Nirvana Shatakam* which declared, I am a part and parcel of the *Brahma*, and so I am. If you find who you are, you will find that you are not this little you anymore. You are that 'U' that is part of the key elements of the Universe. Universe itself begins with 'U'.
Chaitanya Mahaprabhu and Shri Vallabhacharya said that ultimately Shri Krishna personifies *"purno-purushottam paramananda swaroop"* the highest level of Bliss. The ultimate aim of the living being is to be near Him, in His leela to get the internal peace, and to their respective devotees, they were God personified. The last of these legendary *Acharyas* was Rishi Aurobindo Ghose. On the other hand, in the West, there was a long tradition of philosophers like Plato, Aristotle and Socrates. Similarly, in the east we had Lao Tzu and Confucius. In many other countries, there. They tried to explain

creation, preservation and the fixed destiny of the world. Many questions about life, death and rebirth also rush to the mind

Science and Spirituality - A Union

At the same cusp of time, we had a tradition of scientists whose observing nature and the propensity to try and understand how it works and manifests gave us new lessons. It is extremely important to keep refreshing ones' views and ask innocent questions with open mindedness. Einstein always asked such simple questions, the answers of which gave birth to new realms of subject of study. With time and experience we tend to take things for granted miss the mystery of things. For example, did you see that dazzling light in the morning sky? People called it Sun. Since they told you it is Sun and they taught you that you can see Sun every morning in the sky, you are thankful and happy. As a result you have become knowledgeable, but there is another angle to that sun you might have ignored. The moment you named it, the beauty is gone. They called it Sun. Simple, daily, routine, hot, boring Sun. You lost the marvelous experience of experiencing Sun or missed learning billions of aspects of sun, like its energy, heat, storms, magnetic field, gravity and so on. The greatest problem with believing we acquired complete knowledge is that you might lose real 'sense' of it or the true science behind it. You miss cosmic sense, when you try to define it with the normal finite dimensional sense. The real beauty of life is in sensing it deeper and enjoying the infinite bliss of the object and its experience.

Proponents of a New Wave

Naturally, mathematics becomes an amazing tool and language to express complex ideas. In India, we were privileged to have Kanad, Aryabhatta and many others. We also developed Ayurveda, Yoga, Metallurgy, Aeronautics, Chemistry and many others. In the West, valuable and interesting scientific revolution started with Copernicus, Galileo, then Newton, Descartes, and many others

Towards the end of the 19th century and the early 20th century, there came again this resurgence in physical sciences with names like Max Planck, Einstein, neuroscientists like Andrew Newberg, Sir Arthur Eddington etc. Einstein endowed us with the Theory of Relativity which revolutionized the sciences at that time. Space, time and gravity were explained. In India, Sir Jagdish Chandra Basu started experimenting with plants and declared that plants have life, feelings and a soul. Quantum mechanics goes deeper and deeper into the mysteries of nature- even at the micro levels. We also have chosen the theories of the vibrating superstrings and its variants, multiple universes. Astrophysicists like Sir Arthur Eddington, Hawkins, Roger Penrose and others gave us new theories of the cosmos to think about. They gave us ideas on Black Holes, Wormholes, Hyperspace and the white dwarfs, the expanding universe as well as the pulsating universe, the Big Bang theory etc. Some say that there were 26 dimensions, some say that there were 11 and some say that there were 10. With all these our awareness of reality has expanded and we started seeing what really reality is. But certainly it's more than four — that is length, breadth, height and time. By the end of the 20th century and the commencement of the 21st century particularly,...some mysteries deepened. Another element came, other than only matter and energy. Consciousness also came to play a crucial part. Where a large school of scientists like David Bohm to Amit Goswami, who is just with us, it may be said that consciousness may be the ultimate goal - it's something that's all pervading. Everything emanated from Consciousness. Is it *Brahma* then? Physical sciences and philosophy really seem to be merging.... Is it all a mystery then as per Erwin Schrodinger? Mankind is still continuing the quest for Truth and Reality.

The Perception of Consciousness

Consciousness is also a mystery. If we see a small example about human consciousness, and our senses, fundamental questions arise. Senses, for example, optical, auditory or gustatory perceptions cannot function independently of religion. "I see or the eyes hear" this is more of a myth. However, seeing or hearing do not occur in these sense organs. From there on, the signal is sent to the eyes or ears. As you know, there's no mind in the organ of the eyeball when it interprets a landscape. The lens focuses the light upon the retina, which when stimulated by a photon, emits an electron or current sent to the optic nerve. The optic nerve is also simply a transfer relay medium to the occipital lobe of the brain. The electronic and neuronal activity of the brain, by some scientists may be imagined as producing images or thoughts of the objects projected on the retina. However, there's nothing in Maxwell's equations of electromagnetism that suggests that electromagnetic currents or feelings produce thoughts or something similar. Rather, the electricity and magnetism may be looked upon as concepts in themselves i.e. produced by thoughts. It is the conclusion of reason that's the immediate and instantaneous part of such concepts...These are what is experienced as actual or real electromagnetism. In fact, it is the soul that sees and feels , thinks, wills and reasons. Even though one's attention may shift to different phases of consciousness - perceptual, judgmental or rational, the source of reasoning is the active, determining principle. A robot with the photoelectric tube sensor may see but cannot reason, will or feel. A dead body with the eye and other organs still intact, we find, cannot feel or reflect. Why? We have heard about or seen some yogis in the state of *'samadhi'*. The activities of their heart or brain are totally closed in that state. It can be recorded by machines even. When they come out of their state *of 'samadhi'* they are restored to their normal state again - HOW?

The beauty of landscape is determined by the mind guided by the soul on the coherence of the context. Is it Absolute? Is it that Absolute which inheres in every soul as its reflection, just as many pots of water can reflect the sun on its surface. Thus the

reflection is not the sun. Neither it is the universe. The finite soul is more like a reflected image of the whole for countless pots reflecting the light of the whole. Sometimes, while sitting in our temple or *pujagriha,* early in the morning etc. we feel a totally pious and serene atmosphere. If we are alone and with our deity we feel as if we are talking to HIM. Is it electromagnetism that we are feeling then? We do not know what exactly is electromagnetism.

It's all about a perception. Similarly, the other feelings around us float / billow around us. Is it for something more, is it a quest for something else then? We do not know, we only know what it is. We only feel that some bigger force called God exists. What it is, how it is...this is an eternal question.

In this context, I quote a few lines from the seminal book of verse "Kamayani" by Sri Jaishanker Prasad:

"Oh! Eternal beauty! Who are you?
How can I ever express myself!
What you are is an eternal mystery.
Thoughts even fail to reveal the meaning."

Quantum Physics is Not Unfathomable Rocket Science

About Quantum Physics world famous scientist Michio Kaku says, "We physicists are not driven to do this because of better color television.... That's a spin-off. We do this because we want to understand our role and our place in the universe." It appears that just like the science of matter and energy a science of consciousness will gradually emerge out. Once we have the science, based upon that the human race can proceed towards a sublime path.

If we stop for a moment and think how amazing it is see two particles at really great distance get entangled and behave in sync with each other. This mysterious phenomenon doesn't it tell us there is so much more fundamental to be investigated and understood. When we read about interpretations of double-slit experiment don't we wonder what enigma is at work that particles behave like waves at times and as particles at the other and now observer and his consciousness seem to be playing a major role in outcome? Don't we get amazed to see what other dimensions or parallel universes are at work to manifest this universe in this great continuum of life and events. Quest for reality is showing us nothing certain at micro level and indicating all that is there is just probability and what exists is a by-product of probabilistic matrix of materialization. Where did it start? Who started it? Do tachyons exist? Are there other parallel universes? If they exist are they copies of the current ones or totally independent ones which exist on their own? Are there miniature other dimensions? Is there life on other universes? Is this world holographic as some scientists put it? So many wonderful questions going to

ask and find answers to our quest towards reality.

I quote two stanzas written by my favorite poet Sri Jaishanker Prasad in the book *'Kamayani'*.

"Truth! You are, but merely a word.
Yet how complex is your meaning;
Playing in the cage of intelligence,
You behave like a petted-parrot.
In all discussions your constant search,
Is repeated like the empty slogans;
But with the touch of logical hands,
You mysteriously vanish in oblivion."

My Prayer

With folded hands we pray to them that give us one theory the path of which we can follow..please sit and put your heads together for the sake of *"Satya dharmaye drishtaye".*

Chairman Emeritus,
Simplex Infrastructures Ltd

आचरण का महत्व

एक बार रूस के प्रसिद्ध लेखक लियो टॉलस्टॉय को अपना काम-काज देखने के लिए एक निजी सहायक की जरूरत पड़ी। इस बारे में उन्होंने अपने कुछ मित्रों से भी कहा, कि उनकी जानकारी में अगर कोई योग्य व्यक्ति हो, तो उसे अवश्य भेजें। कुछ दिनों बाद उनके एक दोस्त ने किसी युवक को उनके पास भेजा, वह युवक काफी पढ़ा-लिखा था, उसके पास ढेरों सर्टिफिकेट थे। वह टॉलस्टॉय से मिला, मगर उससे पहले उन्होंने एक ऐसे युवक को अपना सहायक बना लिया था, जिसके पास न तो अनुभव था और न ही वह उस युवक जितना पढ़ा-लिखा था।

युवक ने लौटकर टॉलस्टॉय के मित्र को पूरी बात बताई। वह सुनकर हैरान होकर मित्र टॉलस्टॉय के पास पहुंचे और उनसे पूछा, 'क्या मैं इसकी वजह जान सकता हूं?' टॉलस्टॉय बोले, 'दोस्त, जिसे मैंने चुना है, उसके पास तो किसी की भी तुलना में अमूल्य प्रमाणपत्र हैं। उसने मेरे कमरे में आने के पहले मेरी अनुमति ली। डोरमेट पर अपने जूते साफ किए, तब अंदर आया। उसके कपड़े साधारण, लेकिन साफ सुथरे थे। मैंने उससे जो सवाल किए, उसने बिना घुमाए-फिराए उसके संक्षिप्त उत्तर दिए। उसने कोई अनुनय-विनय नहीं की। न ही वह किसी की सिफारिश लाया था। अधिक पढ़ा-लिखा न होते हुए भी उसे अपनी योग्यता पर विश्वास था। इतने सारे प्रमाणपत्र बहुत कम लोगों के पास होते हैं।

फिर टॉलस्टॉय ने उसके बारे में बताया जो कई डिग्रियां लेकर आया था। टॉलस्टॉय ने कहा, 'तुमने जिस व्यक्ति को भेजा था, वह सीधा ही कमरे में चला आया। बिना आज्ञा लिए कुर्सी पर बैठ गया और अपनी योग्यता बताने के स्थान पर तुमसे परिचय के विषय में बताने लगा। अब तुम्हीं बताओ, उसकी इन डिग्रियों की क्या कीमत है?' मित्र टॉलस्टॉय की बात समझ गया। वह भी वास्तविक प्रमाणपत्र यानी आचरण का महत्व जान चुका था।

गुरुनानक के भक्ति संबंधी विचार

डॉ. अमरेंद्र पांडेय

गुरुनानक की रचना है जपुजी। इसके प्रारम्भ में ही परमेश्वर की परिकल्पना को लेकर जो विचार है वह निर्गुण और निराकार की तरह है। गुरुनानक की भक्ति का स्वरूप इसी निराकार से निर्मित होता है। देखिए '1ॐ सति नामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु, अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि।' यह मंत्र सिख धर्म में भक्ति के लिए ईश्वर को उसी रूप को हमारे समक्ष रखता है। गुरु नानक की प्रारंभिक रचनाओं में ही यह लक्षण दिखाई देने लगते हैं। उपरोक्त पंक्ति 'भक्ति' का सर्वोच्च उदाहरण है जो नानक जी की भक्ति संबंधी धारणा को प्रकट करता है। सिख धर्म के लिए यह पंक्ति मूल मंत्र की तरह है। इसका नित्य पाठ प्रातः काल और शयन के समय किया जाता है।

कबीर की तरह नानक की वाणी ने भी भक्ति में सुधार की गुंजाइश और उस परमेश्वर तक पहुंचने की प्राप्ति 'गुरु' की कृपा के माध्यम से ही बताई गई है। भक्ति के क्षेत्र में गुरु की वंदना मंगलाचरण की तरह है। यह मंगलाचरण भक्तिकालीन कवियों में तुलसी के यहां व्याप्त है। 'आदिग्रंथ में किसी न किसी रूप में इसे पांच सौ से अधिक बार दोहराया गया है।' जपुजी की वाणी को सिर्फ सिख धर्मों तक केंद्रित नहीं किया जा सकता है बल्कि नानक की इस रचना ने सभी धर्मों, जातियों व वर्गों को प्रभावित किया है। नानक कहते हैं-- "परमेश्वर एक है, उसी का नाम सत्य है, वह कर्तापुरुष है, वह निर्भय है, वह निरवैर है, वह कालातीत है, वह अयोनि है, स्वयं से प्रकाशित है और गुरु की कृपा से उसकी प्राप्ति होती है।"

गुरुनानक के उपर्युक्त विचार 'जपुजी' में हैं, ये उनकी प्रारम्भिक रचनाएं हैं। लेकिन ये भक्ति संबंधी विचारों में निर्गुण धारा के अधिक नजदीक हैं और प्रौढ़ भी हैं। यह कथन भी नानक की भक्ति के निर्गुणोपासना के चिन्तन को मजबूत करता है, क्योंकि निर्गुण भक्त कवियों ने बाह्याडम्बरों का विरोध किया है। नानक कहते हैं-- "माला, छापा, तिलक, जनेऊ, चौके-चूल्हे की शुद्धि नीति, व्रत-स्नान आदि रूढ़ियों का यहां खंडन मिलता है।"

गुरु नानक ने परब्रह्म को ही सच माना है और यह कहा है कि उसकी सर्वव्यापकता कालातीत है, समय से परे है, नित्य है और सर्वमान्य है। वही आदि है और आज भी उसी का सत्य है और आगे भी उसी का सच रहेगा। गुरु नानक ने अपनी वाणियों में स्पष्ट लिखा है--

"आदि सचु जुगादि सचु।
है भी सचु नानक होसी भी सचु।"

भक्ति के आडम्बर और उससे संबंधित शून्यता, नेत्र धारण एवं समाधि से अलग नानक जी सत्य के साक्षात्कार पर जोर देते हैं। यह सत्य वही परमेश्वर है और इसके रास्ते में आने वाले सभी तरह के झूठ का आवरण हटा देने के पक्ष में हैं। नानक के इस 'सत्य' तक पहुंचने में मनुष्य तभी सफल हो सकता है जब वह प्रभु की आज्ञा एवं इच्छा के अनुरूप अपने कर्तव्यों का पालन करे, उसी के अनुरूप चले। इस संदर्भ में नानक कहते हैं--

"हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि"

नानक जी कर्म पर जोर देते हैं और यह मानते हैं कि जो व्यक्ति निरन्तर अच्छे कर्म करेगा वह प्रभु के निकट स्थान पाएगा। 'नाम स्मरण' भी नानक की भक्ति का प्रमुख आधार रूप है। वे लिखते हैं-

"जेता कीता तेता नाउ। विणु नावै नाही को थाउ।" - जपुजी, पौड़ी 19

यही नहीं नाम-स्मरण की महत्ता वाणी में भी द्रष्टव्य है--

"हरि नामै तुलि न पुजई, जे लख कोटि करम कमाई।" (महला 1, सिरीराग, पृ. 62)

गुरु नानक ने निराकार ब्रह्म का समर्थन अपनी 'भक्ति' में किया है और यह माना कि सारी समष्टि का पालक और रखरखाव उसी के द्वारा किया जाता है। इनकी भक्ति में उत्पन्न भाव 'निर्गुण ब्रह्म' का अधिक है। नानक ने उपासक को कुमारी के रूप में केन्द्रित किया है और यह माना है कि कुमारी पूरी तरह से ईश्वर पर समर्पित है और अपने शरीर को ईश्वर के लिए सुरक्षित रखती है। यह पंक्ति देखिए-

'खिंथा कालु कुआरी काइआ, जुगति डंडा परतीति"

गुरु नानक ने संत कवियों से अलग भक्ति में सहज साधना पर जोर दिया और उसकी प्राप्ति के लिए प्रेम को जरूरी साधन के रूप में अपनाया। उन्होंने 'हठयोग', कुंडलिनी आदि जैसे दुरूह साधनों को आवश्यक नहीं समझा। नानक जी के सन्दर्भ में डॉ. सुरेश भाटिया लिखते हैं "वे पहुंचे हुए सिद्ध, ज्ञानी और संत थे। उनका दृष्टिकोण अत्यन्त उदार, सहिष्णु और स्नेहपूर्ण था।"

गुरु नानक की भक्ति में ईश्वर को लेकर जो संकल्पना है वह अनेक मौलिक विचारधाराओं से युक्त संकल्पना है। ऐसा लगता है कि नानक ने भी ईश्वर को एक होने, अद्वैत, असीम और सृष्टि का पालक माना है। यही धारणा भक्तिकालीन सगुण कवियों की भी है और संत कवियों की भी। इन्हीं कवियों की विचार सरणि से अपनी विचारधारा की अभिव्यक्ति करते वे दिखाई देते हैं। गुरु नानक ने ईश्वर के दो रूपों का वर्णन किया है "पिंड रूप और ब्रह्मांड रूप। पिंड रूप में वह शरीर में अन्तर्यामी बनकर स्थित है और ब्रह्मांड रूप में प्रायः उसके विराट रूप की चर्चा होती रहती है।"

उपर्युक्त मत में ईश्वर सम्बन्धी धारणा को लेकर जिस विराट रूप की संकल्पना गुरु नानक ने व्यक्त की है वह निर्गुण आराध्य के अन्तर्गत ही है क्योंकि उनका ऐसा मानना है कि ईश्वर का स्वरूप विराट है उसका विस्तार सर्वत्र है। यहां विराट ईश्वर की धारणा सगुण भाव जैसी नहीं है।

नानक जी की भक्तिभावना में सत्य की प्रतिष्ठा है जो लोक में विश्वास की जागृति पैदा करती है। इस जगत में जो भी है वह सच है, उसी के द्वारा निर्मित है, उसके आशीर्वाद ही सच हैं। ईश्वर के शासन और दरबार को सच माना है। नानक ईश्वर की प्रत्येक स्थिति को सच मानते हैं। नानक के भक्तिभाव में सच की प्रतिष्ठा सर्वाधिक है। इसे देखिए

'सचे तेरे खंड सचे ब्रह्मांड
सचे तेरे लोअ सचे आकार।'

ईश्वर की जो आज्ञा और फरमान होता है वह भी सत्य है।

'सचा तेरा हुकमु सचा फुरमाणु
सचा तेरा करमु सचा नीसाणु।'

नानक की ईश्वर सम्बन्धी चेतना का फलक कितना विस्तृत है इस उदाहरण से समझा जा सकता है। उनका मानना है कि हिन्दुओं के वेद, पुराण और मुसलमानों के कुरान आदि उसी ईश्वर के फलस्वरूप हैं। नानक कहते हैं-

कुदरति वेद पुराण कतेबा कुदरति सरब वीचारु
कुदरति खाणा पीणा पैन्हणु कुदरति सरब पिआरु।

नानक यहाँ तक मानते हैं कि इस पृथ्वी को, सभी जातियों, रंगों, पवन, पानी, अग्नि, पृथ्वी आदि उसी ईश्वर के परिणामस्वरूप हैं। गुरु नानक के भक्ति सम्बन्धी विचार में ईश्वर की विराटता की धारणा उनके अनुभव की धारणा से मिलकर निर्मित होती है जैसा उन्होंने देखा, अनुभव किया उसे उन्होंने व्यक्त कर दिया।

गुरु नानक ने अन्य संतों की भाँति परमात्मा के अन्तर्यामी रूप को ही अधिक प्रतिष्ठित किया और घूम-घूम कर इसी रूप का सार्वभौमिक प्रचार किया। गुरु नानक कहते हैं कि 'परमात्मा हर जगह व्याप्त है, जल-थल में विराजमान है। उसी की ज्योति सर्वत्र है।' नानक वाणी से उद्धृत यह दोहा देखने योग्य है-

घट-घट अंतरि ब्रह्मु लुकाइया घटि-घटि जोति समाई।

गुरु नानक ने परमात्मा को अनेक नामों से सम्बोधित किया है। 'अगम, अगोचर, अलख अपार, परब्रह्म, गोविन्द, गोपाल, मधुसूदन, जगजीवन, दीनदयाल, भक्त वत्सल के साथ-साथ राम, हरि, मोहन, निरंजन और मुरारी आदि नामों का प्रयोग उन्होंने किया है।'

उपर्युक्त मत के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि नानक ने ईश्वर के सम्बोधन में जितने नामों का उल्लेख किया है वे नाम अन्य संतों द्वारा पहले से ही सम्बोधित किये जाते रहे हैं। वे परम्परा प्रचलित नाम ही अधिक हैं। गुरु नानक ने कहा है '**दूजा कउणु कहा नही कोई। सभ महि एकु निरंजनु सोई।**'

नानक की दृष्टि में भक्त उसी निरंजन की शरण में है। साधक का परम लक्ष्य ही उसी निरंजन की शिक्षा प्राप्त करना है। तभी तो वे कहते हैं "मनु मारि तुम्हे निरंजना।"

नानक की भक्ति में वियोग की पीड़ा विद्यमान है। ईश्वर के लिए उनके यही विविध सम्बोधन हैं। हृदय की इसी पीड़ा को व्यक्त करते हुए नानक लिखते हैं-

"मोहन मोह लीआ मनु मेरो बंधन खोलि निरारे।"

भक्ति में सेवा एवं भजन की मान्यता सर्वाधिक है। ईश्वर के स्वरूप का गुणगान, उनका भजन, कीर्तन की भावना, उनके चेतन-अचेतन रूप का स्मरण करते रहना ही 'भक्तिभाव' में सन्निहित है। नारद भक्ति सूत्र में भक्ति क्या है इस पर यह स्पष्ट मत है कि 'भक्ति ही वह अस्त्र है, जिसमें ईश्वरानुग्रह की आकांक्षा सन्निहित रहती है।' भक्ति सर्वाधिक प्रबल रही है, बुद्धि की अपेक्षा राग और भक्ति को लेकर गीता में 'भगवान श्री कृष्ण ने कर्मी, ज्ञानी और योगी की अपेक्षा भक्त को ही सर्वश्रेष्ठ माना है जिसका समर्थन 'शाण्डिल्य भक्ति सूत्र' तथा 'नारद भक्तिसूत्र' में किया गया है।' उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि भक्ति श्रद्धा और प्रेम का मिश्रित रूप है। इसलिए भक्ति पर विचार करने से पहले यह समझ लेना जरूरी है कि भक्ति हृदय के भाव पक्ष के ही अधिक नजदीक है जबकि भक्ति को विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग ढंग से वर्गीकृत किया है- 'वात्सल्य, दास्य, सख्य और माधुर्य। पुनः साधना की दृष्टि से इसे नौ भागों में विभाजित किया गया है।' लेकिन भक्ति में प्रेम और राग को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। आसक्ति का भाव भी भक्त के लिए सर्वोच्च भाव रहा है। अनुराग, प्रीति, समर्पण के केन्द्र में आसक्ति ही है। "नारद भक्तिसूत्र' में भक्ति के ग्यारह साधनों का उल्लेख किया गया है, जिनके नाम निम्न हैं- गुणमाहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयतासक्ति और परमविरहासक्ति।"

निर्गुण भक्तों ने पूजा, आरती जैसे साधनों और बाह्याडम्बरों का न सिर्फ विरोध किया बल्कि उसकी कड़ी आलोचना भी की है। गुरु नानक और अन्य सन्त कवि बाह्य की अपेक्षा आन्तरिक और शारीरिक की जगह मानसिक पूजा पर बल देते दिखाई पड़ते हैं। उनकी भक्ति साधना में नाम स्मरण, निवेदन, भजन, कीर्तन आदि को अधिक महत्व दिया गया है।

अतः परम्परा से प्राप्त भक्ति गुरुनानक देव के काव्य में है, यही इस शोधलेख में विचारणीय प्रश्न है। नानक ने भक्ति में प्रेम और श्रद्धा को विशेष महत्व दिया है। उनकी ऐसी मान्यता थी कि प्रेम के माध्यम से साधक परमात्मा के निकट पहुँचने में समर्थ हो सकता है। भक्ति की प्राप्ति में गुरु की विशेष कृपा को भी नानक महत्व प्रदान करते हैं और ईश्वर की कृपा से भी साधक भक्ति भाव में लीन हो सकता है। गुरु नानक की भक्ति में ब्रह्म-उपासना की जो कोटियाँ हैं वे सख्य भाव के साथ-साथ दास्य और माधुर्य भाव की हैं। ईश्वर के सुमिरन गुणगान को नानक ने भक्ति भाव में सबसे महत्वपूर्ण भावों में से माना है। वे कहते हैं जो भक्त दिन रात भगवान का गुणगान करता है वही उन्हें अच्छा लगता है-

'सो हरि जनु हरि प्रभ भावै
अहिनिसि भगति करे दिनु राती लाज छोडि हरि के गुण गावै।।'

उपर्युक्त पंक्ति से यह स्पष्ट है कि नानक ने भक्त को श्रेष्ठ माना है और कहा है कि वह लज्जा त्याग कर दिन-रात प्रभु के गुणों का गुणगान करे। संत कवियों की भाँति नानक की भक्ति की एक और महत्वपूर्ण कोटि 'नाम-स्मरण' की है। उनकी मान्यता है कि नाम स्मरण से बुरे से बुरे लोग अच्छे बन जाते हैं, 'शास्त्र, स्मृति और वेद का ज्ञान प्राप्त होता है- अतः 'श्रवण से दुःख तथा पाप समाप्त हो जाते हैं, सत्य, संतोष तथा ज्ञान की उपलब्धि होती है, अड़सठ तीर्थों के स्नान का पुण्य होता है और सहज ढंग से परमात्मा में ध्यान लग जाता है।' नानक वाणी से उद्धृत यह पंक्ति इस बात को प्रमाणित करती है--

"सुणिऐ सतु संतोखु गिआनु। सुणिऐ अठसठि का इसनानु
सुणिऐ पड़ि पड़ि पावहि मानु। सुणिऐ लागै सहजि धिआनु।"

यह ध्यान देने योग्य है कि नानक ने भक्ति के लिए श्रवण को विशेष महत्व दिया है और यहां तक माना है कि नाम स्मरण करने से 'व्यक्ति शेख, पीर और बादशाह बनने की क्षमता ग्रहण करता है।

'सुणिऐ सरा गुणा के गाह। सुणिऐ सेख पीर पातिसाह।'

गुरु नानक की भक्ति में सख्य भाव का उदाहरण देखने योग्य है जहाँ वे अपने प्रभु को साजन, सुजान और मीत कह कर बुलाते हैं। इस प्रकार की भक्ति में सख्य भाव भी बड़ी प्रबलता से स्थान रखता है। यह पंक्ति देखिए 'साजनु मीतु सुजाणु सखा तूं साचि मिलै वडिआई।।

इस प्रकार सख्य भाव की भक्ति के बाद गुरु नानक की भक्ति में दास्य भाव भी खूब देखने को मिलता है। अनेक स्थलों पर यह भाव प्रकट है। इनकी भक्ति में दास और सेवक वाली भक्ति भी है। यहाँ पर ईश्वर स्वामी है और भक्त दास है। गुरु नानक की यह वाणी उसका स्पष्ट प्रमाण है-

'तूं उतम हउ नीचु सेवकु कांढीआ।'

इतना ही नहीं नानक ने अपने को अपूर्ण माना है और ईश्वर को पूर्ण। वे कहते हैं कि तुम पूर्ण हो, मैं ओछा हूँ। तुम गम्भीर हो और मैं हल्का हूँ।'

गुरु नानक अनेक स्थानों पर अपने को ब्रह्म के 'चरणों की धूलि' और 'नीच' कह कर सम्बोधित करते हैं। कई लोगों के लिए यह विनम्रता होगी लेकिन यह 'दास्य भाव' की भक्ति का आधार भूमि है

भक्ति के लिए माधुर्य भाव भी महत्वपूर्ण माना जाता है। संत कवि कई जगह पर अपने को 'प्रेयसी' 'पत्नी', 'दुलहिन' कह के सम्बोधित करते दिखाई देते हैं। कबीर ने ईश्वर को 'पति' और अपने को पत्नी माना है। इसी तरह से गुरु नानक ने भी माधुर्य भाव से ईश्वर को मनाने का काम किया है। इस तरह की

भक्ति में भक्त प्रेयसी, प्रेमिका, प्रेम भाव, राग, वासना, लज्जा आदि भावात्मक रूप से ईश्वर पर अनुरक्त रहता है। गुरु नानक की भक्ति में भी माधुर्य भाव कई जगहों पर दिखाई देता है। नानक वाणी की यह पंक्ति देखिए-

'साची, प्रीति न तुटई साचे मेलि मिलाउ'[30]

उपर्युक्त पंक्ति में प्रेम में अनुरक्त होने की बात कही गई है। यह सच्चा प्रेम कभी टूट नहीं सकता है। यह 'प्रेम' ईश्वर के प्रति है।

'सत्संगति' और आचार-व्यवहार को विशुद्ध करने के जितने भी उपकरण हैं वह भी भक्ति के लिए सहायक उपकरण हैं। गुरु नानक की भक्ति में निर्मल एवम् पवित्र मन को भी 'योग' के योग्य माना गया है तभी साधक का मन 'योग' में लगेगा और ईश्वर के प्रति समर्पित होगा? "सद्भावपूर्वक सेवा भावना से व्यक्ति आचरण की सात्विकता एवम् लोकमंगल भावना की अभिवृद्धि भी होती है। जैसे नैतिक कर्मों से शरीर-शुद्धि होती है, वैसे ही दानादि सदाचार से मन की शुद्धि और साधु-गुरु - सत्संग से आत्म-शुद्धि होती है।"[31]

ऐसी सत्संगति और कर्मों की प्रेरणा को नानक भक्ति के लिए अनिवार्य मानते हैं। वे कहते हैं-

'जतु सतु संजमु सीलु न राखिआ। प्रेत पिंजर महि कासट भइआ।

पुंनु दानु इसनानु न संजमु साध संगति बिनु बादि जइआ।'[32]

नानक ऐसा मानते हैं कि इस तरह का आध्यात्मिकता प्रभु की कृपा से ही प्राप्त होती है। भक्ति के साधनों में 'संत' और सत्संग को विशेष दर्जा प्राप्त है। गुरु नानक जगह-जगह संत की महिमा का बखान करते हैं। "नानक वाणी में संत से अभिप्राय परमात्मा के भक्त से है। वही सत्पुरुष है और उसी की संगति सत्संगति है।"[33]

गुरु नानक की भक्ति का फलक अत्यन्त विस्तृत एवम् विराट है क्योंकि उन्होंने उपास्य भाव की दृष्टि से भी साधक पर दृष्टि डाली है। नानक जी ने सगुण भाव से उपासना की और उन्हीं पद्धतियों पर जोर दिया जहां मानवीय गुणों की अभिव्यक्तियां हुई हैं लेकिन पौराणिक, जनश्रुतियां और ऐतिहासिक लीलाओं को अपनी वाणी में महत्व नहीं दिया। गुरु नानक के उपास्य भाव में आत्म निवेदन है. उनका ईश्वर विराट, अव्यक्त, अनादि है.

अतः गुरु नानक की भक्ति सगुण भक्त कवियों की अपेक्षा प्रेम, श्रद्धा और स्नेह से युक्त जरूर है लेकिन उसके नाम-स्मरण में विशुद्ध सौन्दर्य विद्यमान है, जो गूढ़ और रहस्यात्मकता लिए हुए है।

नानक की भक्ति के सन्दर्भ में डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र कहते हैं 'गुरु वाणी में निराकार-निरंजन पुरुष की अद्वैत भक्ति पर विशेष जोर दिया गया है।'[34]

भक्ति के जिन दो रूपों की प्रमुखता दी गई है उनमें (1) 'वैधी भक्ति (नवधा भक्ति) जो विधान परक होती है (2) प्रेमा भक्ति, जिसमें भाव विचार की प्रधानता रहती है। नानक वाणी में वैध भक्ति को महत्व नहीं मिला है। यहां तक कि उसका खंडन भी मिलता है।'[35] इसी संदर्भ में नानक कहते हैं-

'पड़ि पुस्तक संधिया बादं। सिल पूजसि बगुल समाधां।।'[36]

गुरु नानक की भक्ति में प्रेमा भक्ति भी है। इसमें एक-निष्ठता और प्रगाढ़ता, रागानुराग का भाव प्रधान रहता है। नानक कहते हैं-

' हरि बिनु तेरो को न सहाई।

काकी मात पिता सुत बनिता, को काहु को भाई।'[37]

यही नहीं प्रेमा-भक्ति को बताने के लिए नानक ने अपनी वाणी में 'चकोर-चन्द्रमा, मीन-जल, भ्रमर-कमल, चकवी-सूर्य लोभी-धन, जल दूध, भृखा-अन्धध'[38] आदि अनेक उदाहरणों से प्रेमा भक्ति की तीव्रता को व्यंजित किया है। प्रेम भक्ति में विरहिणी की व्याकुलता इतनी तीव्रतम होती है कि मिलने की बेचैनी विरहिणी के लिए छह मास जैसी बीतती है। नानक कहते हैं- 'नानक मिलहु कपट दर खोलहु एक घड़ी खट मास।'[39]

इस प्रकार नानक की भक्ति में जो 'प्रेमा-भक्ति' है। उसमें एकात्म-भाव, निष्ठा पर जोर अधिक है। 'गुरु नानक देव जी की भक्ति का मुख्य स्वर प्रेम है। इस प्रभु प्रेम की 'खुमारी' में ये सदा अलमस्त रहे हैं। आदि ग्रंथ में इसे 'विस्माद' कहा गया है। इस अलौकिक प्रेम को इन्होंने 'सुचज्जी सुहागणी' पति-परायण प्रेमिका के रूप में प्रकट किया है। परन्तु सूफी साधकों की तरह यहां लौकिक श्रृंगार अथवा माधुर्य भाव की गंध नहीं है, केवल प्रतीक रूप में जीवात्मा को ब्रह्म से बिछड़ने की कसक एवम् तड़प है।"[40]

नानक की भक्ति के सन्दर्भ में रमेशचन्द्र मिश्र लिखते हैं "नानक की भक्ति में सद्गुरु कृपा, नाम स्मरण, साधु संगति, दृढ़ विश्वास, आत्म समर्पण, भगवत कृपा के साथ ही परमात्मा का 'भय' भी महत्वपूर्ण है इस भय-भाव को नानक-वाणी में 'हुकमु' कहा गया है। निर्भय केवल परमात्मा है। उसके भय या 'हुकमु' से ही सृष्टि के कार्य चलते हैं। भव-सागर संतरण के लिए परमात्मा के भय का अनुशासन आवश्यक है।"[41] नानक की वाणी से उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है। देखिए--

'भै बिनु कोई न लंघसि पार

भै बिनु कोई न लंघसि पार।।'[42]

अतः यह स्पष्ट है कि गुरु नानक की भक्ति में अंध श्रद्धा का भाव नहीं है क्योंकि उनकी भक्ति में विचार-तत्त्व की अधिकता है। उनके भक्ति सम्बन्धी विचारों में सेवा भाव, गुरु की महत्ता, प्रेम भावना और आचरण की शुद्धता पर जोर अधिक है। अनेक तरह के बाह्याडम्बरों का न सिर्फ विरोध है बल्कि वहीं से आचरण के व्यवहार की शुचिता पर भी जोर है। गुरु नानक की भक्ति सामान्य जीवन में निहित परिपक्व और सर्वमान्य आचरण के समावेश से निर्मित है।

संदर्भ

1. आदिग्रन्थ में संग्रहीत काव्य, डॉ. महीप सिंह, पृ. 19
2. वही, पृ. 19
3. वही, पृ. 19
4. गुरु नानक-वाणी, बेणी प्रसाद शर्मा, पृ. 5
5. नानक वाणी, पृ. 19
6. वही, पृ. 20
7. वही, पृ. 21
8. सन्त कवि नानक: एक अनुशीलन, पृ. 84
9. वही, पृ. 87
10. वही, पृ. 88
11. वही, पृ. 89
12. नानक वाणी, पृ. 89
13. वही, पृ. 90
14. वही, पृ. 95
15. वही, पृ. 96
16. वही, पृ. 98
17. वही, पृ. 99
18. वही, पृ. 100
19. वही, पृ. 138
20. वही, पृ. 138-139
21. वही, पृ. 139
22. वही, पृ. 139
23. वही, पृ. 499-10
24. सन्त कवि नानक: एक अनुशीलन, पृ. 142
25. नानक वाणी, पृ. 83-10
26. वही, पृ. 83-11
27. वही, पृ. 318-3-3
28. वही, पृ. 406-21-8
29. सन्त कवि नानक: एक अनुशीलन, पृ. 144
30. नानक वाणी, पृ. 133-2-1
31. रत्न सिन्धु नानक-वाणी, पृ. 36
32. महला-1 रामकली, पृ. 906
33. सन्त कवि नानक: एक अनुशीलन, पृ. 167
34. सप्तसिन्धु नानक वाणी, पृ. 41
35. वही, पृ. 41
36. महला-1, आसा दी वार, पृ. 470
37. महला 1, गउड़ी चती, पृ. 156
38. सप्तसिन्धु नानक वाणी, वही, पृ. 42
39. सप्तसिन्धु नानक वाणी, पृ. 42
40. गुरु नानक वाणी, डॉ. बेणी प्रसाद शर्मा, पृ. 14
41. वही, पृ. 42
42. महला-1, गउड़ी कुआरेरी, पृ. 151

असिस्टेंट प्रोफेसर, श्री गुरु तेग बहादुर खालसा कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007
मो. 09871940171

रामकथा के कुछ विवादास्पद प्रसंग

प्रो. योगेश चन्द्र शर्मा

वाल्मीकि रामायण को विश्व का प्रथम काव्यग्रंथ कहा जाता है, किन्तु यह कहना सत्य नहीं है कि उससे पूर्व काव्य-साहित्य था ही नहीं। रामायण की रचना अनुष्टुप छन्द में की गयी है और इस छन्द में भी 'रामायण' से बहुत पहले मनुस्मृति लिखी जा चुकी थी। रामायण को आदि काव्यग्रंथ कहने का अभिप्राय मात्र इतना है कि एक ऐतिहासिक कथा को मौलिक काव्यकृति के रूप में विश्व में प्रथम बार 'रामायण' में ही प्रस्तुत किया गया।

रामायण मूलतः सत्य घटना पर आधारित है। रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि ने इस संपूर्ण घटनाचक्र को स्वयं देखा है अथवा व्यक्तिशः उसकी जानकारी प्राप्त की है। इस कथा के वर्णन में काव्य सुलभ अतिशयोक्ति सहज संभव है। यह अतिशयोक्ति वाल्मीकि रामायण में अपेक्षाकृत कम तथा तुलसीकृत रामचरित मानस में अधिक है। घटना के सत्य होने के बावजूद इसका निश्चित समय बतलाना कठिन है। कुछ पाश्चात्य लेखकों ने इसे ईसा से केवल 1500 वर्ष पूर्व की घटना माना है, लेकिन निश्चित ही यह गलत है। यह प्रागैतिहासिक काल की घटना है, जो ईसा से लगभग 5-6 हजार वर्ष पहले की है। कुछ भारतीय लेखकों ने अत्यधिक उत्साही होकर इसे लाखों वर्ष पुरानी घटना भी बतला दिया है, लेकिन इस अतिशयोक्ति को भी स्वीकार करना कठिन है। श्री जगदीश्वरानंद सरस्वती ने अपने ग्रंथ 'वाल्मीकि रामायण' (प्रकाशक- आर्य साहित्य भवन, नयी सड़क, नयी दिल्ली) में की गयी टिप्पणियों में इस घटना को एक करोड़, इक्यासी लाख, उनचास हजार, वर्ष पूर्व की माना है। वे अपने पक्ष में एक अद्भुत तर्क यह भी देते हैं कि वाल्मीकि रामायण में, रावण के द्वार पर सफेद चार दांत वाले हाथियों के होने का उल्लेख है (13--चतुर्थ सर्ग-सुन्दर कांड) इस प्रकार के चार दांत वाले हाथी लगभग ढाई करोड़ वर्ष पूर्व से लेकर पचपन लाख वर्ष पूर्व पाए जाते थे। स्पष्ट है केवल इस तर्क के आधार पर रामकथा की प्राचीनता को तर्कसंगत प्रमाणित नहीं किया जा सकता। इससे केवल इतना माना जा सकता है कि महर्षि वाल्मीकि को चार दांत वाले हाथियों का ज्ञान था, जिसे उन्होंने आलंकारिक रूप में रावण के महल के साथ जोड़ दिया।

महर्षि वाल्मीकि की जाति और उनके कर्म के बारे में काफी मतभेद हैं। कुछ विद्वान उन्हें भार्गव वंश के कुलीन परिवार का मानते हैं और कुछ उन्हें भूतपूर्व डाकू कहते हैं। जनश्रुति के अनुसार डाकू वाल्मीकि को राम का नाम लेने से भी परहेज था। इसलिए प्रारम्भ में उन्होंने मरा, मरा कहना शुरू किया जो बाद में धीरे धीरे ध्वनि परिवर्तन के साथ स्वयं 'राम' बन गया। वाल्मीकि के उत्कृष्ट साहित्य को देखकर यह नहीं लगता कि वाल्मीकि कभी डाकू रहे होंगे अथवा वे किसी पिछड़े या अल्प शिक्षित परिवार के सदस्य रहे होंगे। कुछ लोग उन्हें अछूत जाति का मानते हैं और उसके प्रमाण में वह तर्क देते हैं कि भंगियों में आज भी वाल्मीकि को विशेष स्थान दिया जाता है। श्री सत्यकेतु विद्यालंकार के इस अनुमान में भी काफी वजन है कि महर्षि वाल्मीकि संभवतः भंगियों में ही किसी सुशिक्षित पुरोहित परिवार के सदस्य रहे होंगे (प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग--पृष्ठ - 161)। उनका तर्क है कि अनेक स्थानों पर भंगियों में भी ऐसा कार्य वर्ग होता है, जो ब्राह्मण पुरोहितों के समान पूजन करते हैं, दान लेते हैं तथा आशीर्वाद देते हैं। श्री जगदीश्वरानन्द सरस्वती ने वाल्मीकि को ऋषि-पुत्र बतलाते हुए अपने समर्थन में उनके इन शब्दों को उद्धृत किया है-

प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघव नन्दन
मनसा कर्मणा वाचा: भूतपूर्व न किल्बिषम्

अर्थात 'हे राम, मैं प्रचेतस मुनि का दसवां पुत्र हूं। मैंने मन वचन कर्म से कभी पापाचरण नहीं किया है।'

वाल्मीकि का यह आत्मपरिचय उत्तरकांड में दिया हुआ है, जिसे अधिकांश विद्वान, बाद में किसी अन्य के द्वारा जोड़ा हुआ मानते हैं। स्वयं श्री जगदीश्वरानंद सरस्वती भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं। तब इस आधार पर वाल्मीकि का वंश-निर्धारण कैसे तर्कसंगत हो सकता है? वाल्मीकि किसी भी जाति, वर्ग या वंश के रहे हों, इससे उनके साहित्य की उत्कृष्टता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसलिए इस संबंध में विवाद व्यर्थ है।

उत्तरकांड निश्चित ही बाद में जोड़ा हुआ अंश है। उसकी भाषा और शैली शेष रामायण से अलग हटकर है। वाल्मीकि की मूल रामायण युद्धकांड पर ही समाप्त हो जाती है। युद्धकांड के अन्त में रामराज्य के विस्तृत वर्णन के अतिरिक्त रामायण महात्म्य का भी वर्णन उसके अन्त में ही होता है। युद्धकांड में यह सब करने के बाद उत्तरकांड में नए सिरे से रावण की चर्चा करना तथा रामराज्य का पुनः वर्णन करना असंगति को जन्म देता है, जिसकी अपेक्षा कवि शिरोमणि वाल्मीकि से नहीं की जा सकती। उत्तरकांड को क्षेपक मानने के पक्ष में अन्य अनेक तर्क भी दिए जाते हैं। उदाहरणार्थ महाराज भोज के समय 'चंपू रामायण' लिखी गयी थी, जिसे वाल्मीकि रामायण का संक्षिप्त रूप माना जाता है। इसमें भी केवल युद्धकांड तक की कथा का वर्णन है। इसी प्रकार इटली के एक संस्कृतज्ञ गोरेशियो ने वाल्मीकि रामायण का अपनी भाषा में अनुवाद किया था, उसमें भी उत्तरकांड की चर्चा नहीं है। उत्तरकांड की सर्वाधिक प्रमुख घटना सीता-परित्याग की है और इस घटना की चर्चा सर्वाधिक प्राचीन पुराण, विष्णु पुराण में नहीं है। हरिवंश-पुराण, वायु-पुराण, नृसिंह पुराण जैसे अन्य प्राचीन पुराणों में भी इस घटना की चर्चा नहीं है। अध्यात्म-रामायण और तमिल-रामायण में भी इसका उल्लेख नहीं है।

उल्लेखनीय है कि राम के चरित्र को कलंकित करने वाली दो प्रमुख घटनाएं सीता-परित्याग तथा शम्बूक-वध, उत्तरकांड में ही हैं। एक साधारण धोबी द्वारा शंका उत्पन्न करने पर राम अपनी पत्नी को त्याग देते हैं और आश्चर्य इस बात का है कि ऐसा करते समय वे अपने परिवार के वरिष्ठ सदस्यों तथा शेष जनता के विरोध की भी चिन्ता नहीं करते। स्पष्ट ही इसे न तो तर्कसंगत माना जा सकता है, न किसी आदर्श का प्रेरक और न किसी राजनीति या कूटनीति का अंग। इसी प्रकार जो राम, अछूत केवट को गले लगाते हैं, शबरी द्वारा दिए गए फल-फूल बड़े प्रेम और सम्मान के साथ खाते हैं, वही राम शम्बूक का वध केवल इसलिए कर दें कि छोटी जाति का होते हुए भी उसने तपस्या की थी, यह बात किसी भी आधार पर गले नहीं उतर सकती।

वस्तुस्थिति से प्रतीत होता है कि हिन्दू धर्म में जब पुरोहित तथा उनके पाखंडों के विरुद्ध विद्रोह की

भावना उभरी, तब कुछ लोगों ने हमारी प्राचीन संस्कृति को भी विकृत करना शुरू कर दिया। इसी दौर में लिखे गए कुछ ग्रंथों में सीता परित्याग या शम्बूक वध की घटनाओं का निर्माण किया गया। इन ग्रंथों में रामकथा के संबंध में अन्य अनेक अजीबो-गरीब बातें भी लिखी गयी। उदाहरणार्थ प्राकृत भाषा में तीसरी या चौथी शताब्दी में लिखी एक अन्य रामायण में सीता परित्याग की तो चर्चा की ही गयी है, इसके साथ ही राम की आठ हजार पत्नियां तथा लक्ष्मण की 16 हजार पत्नियां भी बतलायी गयी हैं एक अन्य ग्रन्थ 'दशरथ जातकम' में सीता परित्याग की घटना का उल्लेख किया गया ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार के ग्रंथों के रचयिताओं ने अथवा उनके समर्थकों ने ही तीसरी चौथी शताब्दी के आसपास अपनी बात को प्रमाणित करने के लिए उत्तरकांड के नाम से एक नया अध्याय वाल्मीकि रामायण में जोड़ दिया। यह भी संभव है कि उन दिनों की परिस्थितियों के अनुरूप समाज में महिलाओं और शूद्रों की स्थिति को हीन प्रमाणित करने के लिए किन्हीं राम-भक्त पुरोहितों ने ही रामायण से यह छेड़छाड़ की हो।

मूल वाल्मीकि रामायण के साथ उत्तरकांड को जोड़ने से केवल राम के ही चरित्र में विकृति नहीं आयी, अपितु रावण के अनाचार, अत्याचार तथा बलात्कारों का अतिरंजित वर्णन करके उसके चरित्र को भी अत्यधिक पाशविक बना दिया गया, जो शेष रामायण में वर्णित रावण से मेल नहीं खाता।

रामकथा में कहीं-कहीं द्विअर्थी शब्दों के कारण भी शंकाएं उत्पन्न हुई हैं। उदाहरणार्थ 'दशरथ' का अर्थ दस रथों का स्वामी नहीं है अपितु दसों दिशाओं में अपना प्रभाव रखने वाले व्यक्ति से है। 'शब्द कल्पद्रुम' में 'दशरथ' की व्याख्या इस प्रकार दी गई है-- 'दशसु दिक्षु गतो रथो यस्य' अर्थात् जिसके रथ की गति दसों दिशाओं में हो अथवा जिसका प्रभाव दसों दिशाओं में हो। इसी प्रकार रावण के लिए जो दशानन शब्द का प्रयोग किया गया, उसका अर्थ भी 'दस मुंह वाला' नहीं है, बल्कि ऐसे व्यक्ति से है जिसका प्रभाव दसों दिशाओं में हो। श्री अरुण ने

अपने ग्रंथ-- 'भारतीय पुरा इतिहास कोश' में दशानन का एक और अर्थ दिया है। वह है, 'चार वेद तथा छः वेदांगों का ज्ञाता'। 'दशानन' के आधार पर ही रावण की बीस भुजाओं की भी कल्पना कर ली गयी, जो वास्तव में गलत है। युद्ध के समय स्वयं महर्षि वाल्मीकि ने रावण के एक मस्तक तथा दो भुजाओं की बात कही है। कुछ विद्वानों के अनुसार रावण के लिए 'दशानन' शब्द का प्रयोग उसी प्रकार समझा जाना चाहिए जिस प्रकार सिंह के लिए कभी-कभी पंचानन (चारों दिशाओं तथा ऊपर एक साथ देखने वाला) शब्द का प्रयोग किया जाता है।

हनुमान, सुग्रीव तथा बाली आदि को बन्दर तथा जाम्बवन्त को रीछ बतलाकर उनकी विशेष प्रकार की मुखाकृति तथा पूंछ आदि की कल्पना करना भी गलत है। वास्तव में उस समय वानर, ऋक्ष तथा नाग आदि जातियां भारत में निवास किया करती थीं, जिनका कालान्तर में मानव जाति में समन्वय हुआ। 'मानव' नाम मनु से पड़ा जो इस नयी संस्कृति के प्रवर्तक भी थे। वर्तमान नागालैंड में रहने वाले नागा जाति के लोग मूलतः नाग जाति के ही हैं। वानर तथा ऋक्ष जातियां के पूरी तरह मानव जाति में मिल जाने के कारण अब उनका पृथक अस्तित्व नहीं रहा श्री सत्यकेतु विद्यालंकार (वैदिक युग का राजनीतिक इतिहास) के अनुसार 'राम के काल में जिन जातियों को वानर व ऋक्ष आदि कहा गया है, सम्भवतः वे इन पशुओं की देव रूप में पूजा करती थीं और इसी कारण उनका परिचय इन पशुओं की संज्ञाओं द्वारा दिया जाता था।' अन्य अनेक विद्वानों ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किए हैं। इन जातियों का अस्तित्व ऐतिहासिक सत्य है और इसलिए उन्हें बन्दर या रीछ बतलाना गलत है। वाल्मीकि ने जामवन्त तथा हनुमान को वेदज्ञ और व्याकरण का विद्वान बतलाया है। स्पष्ट ही पशुओं से वेदज्ञ होने की आशा नहीं की जा सकती।

रामायण में हनुमान की 'लाङ्गूल' की भी चर्चा की गयी है, जिसका सामान्य अर्थ पूंछ होता है। लेकिन आश्चर्य इस बात का है कि वानरों की 'लाङ्गूल' की तो चर्चा रामायण में है, लेकिन उनकी पत्नियों की 'लाङ्गूल' की नहीं। श्री जगदीश्वरानंद सरस्वती का इस संदर्भ में विचार है कि वानरों का कोई राष्ट्रीय चिन्ह पूंछ जैसा कुछ होता होगा, जिसे 'लाङ्गूल' कहते होंगे। बन्दरों की पूजा करने वालों का ऐसा राष्ट्रीय चिन्ह होना कोई आश्चर्य की बात नहीं कही जा सकती। इस 'लाङ्गूल' को वानर हमेशा अपने साथ रखते होंगे और इसी को जलाने का आदेश रावण ने दिया होगा। जहां तक उनके उड़कर कहीं जाने का प्रश्न है, उससे यही लगता है कि उनके पास वायुयान जैसे कुछ यान होंगे, जिनका वे प्रयोग करते होंगे। वानर जाति कलाकौशल में प्रवीण थी। इसलिए उनके पास ऐसे यान होना असंभव नहीं। राम भी लंका से वापिस अयोध्या ऐसे ही एक बड़े यान से लौटे थे जिसका नाम 'पुष्पक विमान' था।

इसी प्रकार जटायु को 'गीध' बतलाना भी गलत है। वह सम्राट दशरथ का मित्र था और सीता उसे 'आर्य' शब्द से संबोधित करती है। निश्चित ही ऐसा व्यक्ति गीध नहीं हो सकता। श्री जगदीश्वरानंद सरस्वती ने अपने ग्रंथ 'वाल्मीकि रामायण' में इसे गृध्रकूट का भूतपूर्व राजा बतलाया है, जिसकी जटाएं बढ़ी हुई थीं और इसीलिए उसे जटायु कहा जाता था। वाल्मीकि ने जटायु को कहीं-कहीं 'पक्षी' भी कहा है। लेकिन श्री जगदीश्वरानंद के अनुसार यहां पक्षी का अर्थ जानवर से नहीं अपितु विद्वान से है। इस तर्क के पक्ष में 'ताण्ड्य ब्राह्मण' की यह पंक्ति प्रस्तुत की जा सकती है--- 'ये वै विद्वांसस्ते पक्षिणो ये विद्वांसस्तेऽपक्षाः' (ता. ब्रा. 14.1--13) अर्थात् 'जो विद्वान होते हैं वे पक्षी और जो अविद्वान होते हैं वे पक्षरहित हैं।' इसी प्रकार जटायु के लिए तीक्ष्णतुंड शब्द का प्रयोग किया गया है, लेकिन तुंड का अर्थ चोंच भी होता है और मुंह भी। जो लोग जटायु को गीध समझने की भूल करते हैं, वे इसका अर्थ 'पैनी चोंच वाला' मानेंगे और जो उसे मनुष्य समझते हैं, वे इसका अर्थ 'तीखे मुंह वाला' या 'प्रभावशाली व्यक्तित्व' वाला ही मानते हैं। रामकथा में यत्रतत्र आने वाली इस प्रकार की बातों को काव्यसुलभ अलंकारिक भाषा भी माना जा सकता है।

यह कहा गया है कि शाप के कारण अहिल्या पत्थर की हो गयी थी और श्री राम ने उससे अपने चरण छुआकर उसे वापिस अहिल्या का रूप दे दिया था। यह बात वैज्ञानिक दृष्टि से तो गलत है ही, इसके साथ इस दृष्टि से भी अनुचित है कि क्षत्रिय राजा राम, ऋषि पत्नी अहिल्या (चाहे वह पत्थर की ही क्यों न हो) को अपना पैर छुआएं। वाल्मीकि के अनुसार अहिल्या को केवल यह शाप दिया गया था कि वह वर्षों तक तपस्या करती हुई पृथ्वी पर ही शयन करे। श्री राम जब आश्रम में आए तो उन्होंने आगे बढ़कर अहिल्या के चरण छुए.

सामान्य जनधारणा यह है कि रावण की मृत्यु विजयदशमी को हुई तथा उसके बाद दीपावली के दिन राम वापिस अयोध्या लौटे थे। तथ्यों को देखते हुए ये दोनों ही बातें गलत प्रतीत होती हैं। 'रामायण के अयोध्या कांड (तृतीय सर्ग 4) के अनुसार मूलतः राम का राज्याभिषेक चैत्र मास में होना तय हुआ था और उसी माह उन्हें 14 वर्षों के लिए वनवास जाना पड़ा था। इसके अनुसार 14 वर्ष भी चैत्रमास में ही पूरे होते हैं, आश्विन या कार्तिक में नहीं। रावण वध भी चैत्र में ही हुआ था। रावण वध के बाद उसकी अन्त्येष्टी तथा विभीषण के राज्यारोहण में थोड़ा ही समय लगा, क्योंकि राम को भरत की चिन्ता हो रही थी। वनवास की अवधि पूरी होने को थी। इसीलिए राम ने विभीषण के आग्रह को भी स्वीकार नहीं किया कि वे कुछ दिनों लंका का आतिथ्य स्वीकार करें। तब विभीषण ने उन्हें पुष्पक विमान से भेजा, जिसमें वे भारद्वाज आश्रम में पहुंचे। वह दिन चैत्र शुक्ल पंचमी का था। इस प्रकार चैत्र में ही रावण वध हुआ और इसी माह में राम वापिस अयोध्या आगए। इस घटना से यही प्रतीत होता है कि दशहरा तथा दीपावली का रामकथा से कोई सीधा संबन्ध नहीं है। इन त्योहारों को लोकप्रियता के कारण ही संभवतः कालान्तर में इनके साथ रामकथा को जोड़ दिया गया।

10/611 कावेरी पथ, मानसरोवर
जयपुर-302020 (राजस्थान)
मो.-9828662214

पंडित शादीराम की श्रीकृष्ण लीला

[illegible]

19 अक्तूबर 1889 ई. को कैथल (हरियाणा) जनपद के सीवन में कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की नौवी को कौशाम गोत्रीय गौड़ परिवार में शादीरामजी का जन्म हुआ था। उन्होंने अपने बारे में लिखा है :

करनाल जिला पंजाब में गूहला है तहसील
एक कस्बा सीवन वहाँ कैथल से पाँचे छः मील
राजपूतों के रुलदूँ घर होंगे जहाँ जयरामदास साहूकार हुआ।
एक इंगलिश मिडिल स्कूल जहाँ जलसा एक सुधर हुआ
छोटा सा आदमी एक हाजिर वहाँ शादीराम गंवार हुआ।

पंडित शादीराम की 'श्री कृष्ण लीला' लगभग सवा सौ साल पूर्व की कुरुक्षेत्र की बोली में 'कौरवी' में निबद्ध एक उत्कृष्ट कृति है। पंडित शादीराम ने अपने 'श्री कृष्ण लीला' में चौबोलों में अपनी सम्पूर्ण ओजस्विता, ऊर्जा तथा प्राण शक्ति के साथ स्पंदित होता दिखाई देता है। पंडित शादीराम की 'श्री कृष्ण लीला' का नयापन तथा उनके चौबोलों की विलक्षणता पढ़ने वालों को आश्चर्य में डालती है। खासकर ग्वालन और यशोदा के प्रसंग तो अपने अनोखेपन के कारण मन को छू लेते हैं :

कहने लगी यशोदा नार पुत्र ऐसा नहीं मेरा, मतवारी
तेरी यह सब झूठी है बात, कृष्ण करता नहीं कोई उत्पात
तुम्हें जो फिर भी कभी मिल जात, आन बतलाना मुझे सारी
मेरे सब घर में है सामान, दही माखन यहीं खा रहे श्यान
फिर करता क्यों चोरी कान्हन, अकल तेरी बिल्कुल गई मारी
भाग वहीं से आई घर नार, कृष्ण का करन लगी इन्तजार
अगले दिन आ गये कृष्ण मुरार, उठा लई झट मक्खन की झारी
दही खाते थे यशोदा चंद, गोपी ने पाट कर दिए बन्द
दिल में फिर हो गई बड़ी आनन्द, चली जहाँ आई नंद की नारी।

पंडित शादीराम यद्यपि अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे तथापि उनकी गाथा में लोक साहित्य के सभी तत्व देखे जा सकते हैं। पंडित शादीराम जी की कृति को साहित्य जगत में लाने का श्रेय डॉ. दामोदर वासिष्ठ जी को है इस हेतु डॉ. दामोदर वासिष्ठ जी का हिन्दी और हरियाणवी जगत सदा ऋणी रहेगा। पंडित शादीराम की भाषा हरियाणा की भाषा है। दोहा, चौबोला, ग़ज़ल आदि छन्दों का प्रयोग भी उनकी भाषा में हुआ है।

एक ग़ज़ल नमूने के लिए देखें :

नारद की बानी सुनके राजा दिल बीच हुआ खटका

वसुदेव पुत्र को मंगवाकर एक पत्थर पर जा पटका

वसुदेव देवकी बुलवाकर फिर नज़र कैद कीने जाकर

कहाँ मात पिता ने समझाकर कहाँ ज्ञान चला गया तेरे घर का

कहा कंस कौन अब समझाले, तुम इसकी मदद करने वाले

जितना हो जोर तुम सब ला ले, तुमको भी दिखलाता हूँ लटका

उनको भी किया बंदीखाने, असुरों को बुला लगा समझाने

यदुवंशी जो पाने स्याने, दो सबको मार दे दे झटका

नारद ने आन बतलाया है, बस देव अंश यहाँ आया है

'शादी' के मन को भाया है गुल मोर मुकट नागर नट का।

पंडित शादीराम ने सूरदास की भाँति 'श्री कृष्ण लीला' में श्रीकृष्ण की लीलाओं का सजीव चित्रण किया है। उनके काव्य में श्रीकृष्ण की विभिन्न क्रीड़ाओं एवं संस्कारों के साथ साथ दोहा, भजन के माध्यम से सम्पूर्ण परिस्थितियों का सुन्दर एवं सजीव चित्र अंकित किए गए हैं। एक भजन रचना की पंक्तियां पेश हैं

हेज हेजी कृष्णजी लग गये धेनु चरान
पड़े रात गोपियों के साथ करते थे रास महान
जो मथुरा दही बेचन जावे छीन के लग जा खान

तीनों लोक को मोहित कर दिया सुना बंसी की तान

काली नाग ने एक रोज यमुना के किनारे आन
झाड़ चला अपने मुख से विष भारी नादान
खाकर घास मरी सब गौवें जान गये भगवान
उन्हें जिन्दा कर मनमोहन मुरली लगे बजान
ग्वाल बाले सब पास बुलाकर खेलन लगे मैदान

ऐसा बल्ला मारा गेंदा को गई यमुना दरम्यान।

कैथल के नित्यानंदजी को शादीराम जी अपना गुरू मानते थे :

शादीराम कह भजन हरी बिन झगड़ा झूठ महान

गुरू हमारे नित्यानंद थे, था कैथल अस्थान

पं. शादीराम को आशुकवि या तत्काल कवि के नाम से भी जाना जाता था वे लोक कवि व गायक के रूप में प्रख्यात थे। एक बार कलायत की वेश्याएं हुस्ना, मुंदी व पुनी कवि से मिलने सीवन आई। मुंदी के सौन्दर्य को लक्ष्य कर कवि शादीराम ने तत्काल पद चौबाला सुनाया जो इस प्रकार है :

एक माहेल का कैलात में पस्तो कद अन्दाज
गज़ब अदा वो गुलबदन ज़ेवरे हुस्न मुमताज
सख्त नाराज बड़ा करड़ा दिल था

लब पर लकीर मानिंदे तोरे रूखसार पै एक कातिल तिल था

नस्तर सा नाक, गजब आँखें, अंजन भी बीच में शामिल था

मुख लाल लाल, दिया जादू डाल जो माल बेचने काबिल था

अज़हद, नखरे, किये लाखों के इकरे
कहते 'शादीराम' हम भी आशिक हुये बकरे।

कवि की तत्काली प्रवृति के बारे में उनकी निम्नपंक्तियाँ भी महत्त्वपूर्ण हैं--

मूर्ख शठ पापी, दया दिल में नहीं व्यापी
कहते 'शादीराम' शाम तक भर हूँ कापी

कवि शादीराम राम तथा दुर्गा के भक्त थे तथा माँ दुर्गा उन्हें काव्य रचना के लिए प्रेरित भी करती थी :

कृपा करो माता-तेरा जग में यश गाता
रामायण की कथा यहाँ हर साल सुनाता

आर्यावर्त की पावन भूमि पर लीला पुरुषोत्तम योगेश्वर श्रीकृष्ण अनुकरणीय महापुरुष हुए हैं उनके उच्च आदर्श उत्तम आचरण व सदनीतियाँ युग-युगान्तर तक सर्वजन कलिए प्रेरणा स्रोत बने रहेंगे। श्री कृष्ण के चरित्र का वर्णन किसी भी नाम से अभिहित हो भारतीय चिन्तन-मनन व लेखन की भावधारा के उपजीव्य रहे हैं। कवि पंडित शादीराम की कृष्णलीला भी इसी परम्परा की एक कड़ी के रूप में है इनमें कवि ने तथ्यगत चिन्तन को तर्कसंगत अभिव्यक्ति दी है। इस महान संत का वर्ष 1973 में देहावसान हो गया था। शत-शत नमन्।

रोटरी स्कूल फॉर डेफ, रामबागरोड,
अंबाला छावनी 133001

नौटंकी

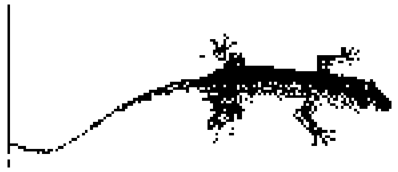

एक जिद्दी बालक जिद पर अड़ गया
बोला कि 'छिपकली' खाऊंगा।
घरवालों ने बहुत समझाया
पर नहीं माना !
हार कर उसके गुरुजी को बुलाया गया।
वे जिद तुड़वाने में महारथी थे. .
गुरुजी ने भी समझाने की कोशिश की पर वो अड़ा रहा।
आखिर गुरुके आदेश पर छिपकली मंगवाई गई।
उसे प्लेट में परोस बालक के सामने रखकर गुरुबोले,
ले ! अब खा।
बालक मचल गया.. बोला
'ना ऐसे नहीं'
'तली हुई खाऊंगा..'
गुरुजी ने छिपकली तलवाई और दहाड़े,
'ले अब चुपचाप खा..'
बालक फिर गुलाटी मार गया
और बोला,
'मैं तो आधी खाऊंगा...'
छिपकली के दो टुकड़े किये गये..
गुरुजी बोले 'चल खा अब'
बालक मासूम सा मुंह बना कर
गुरुजी से बोला,
'पहले आप खाओ..तभी मैं खाऊंगा'
कुछ उपाय ना बनता देख
गुरुने आंख नाक भींच
किसी तरह आधी छिपकली निगली,
गुरुके छिपकली निगलते ही
बालक दहाड़ मार कर रोने लगा कि...
'आप तो वो टुकड़ा खा गये
जो मुझे खाना था..'
गुरु ने धोती सम्भाली और
वहां से भाग निकले,
करना धरना कुछ नहीं,
नौटंकी दुनिया भर की।

तमिल साहित्य एवं संस्कृति पर संस्कृत का प्रभाव

डॉ. एम. शेषन

संस्कृत प्राचीन काल से इस देश की सम्पर्क भाषा बनी रही और वह इस देश की संस्कृति की भी भाषा बनी रही। समस्त भारतीय भाषाओं के साहित्य को इसने अनेक प्रकार से प्रभावित किया है। भारतीय भाषाओं और उनकी संस्कृति पर पड़े संस्कृत के इस प्रभाव का समग्र एवं समीक्षित रूप से अध्ययन और आकलन अभी तक योजनाबद्ध तरीके से नहीं हुआ है।

प्राचीन काल से इस देश में एक सांस्कृतिक एकता बनी रही इसे भारतीय साहित्य के अध्येता विद्वान स्वीकार करते हैं। सुदूरपूर्व उस युग में यातायात की अनेक असुविधाओं और बाधाओं के होते हुए भी यहां साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं वैचारिक आदान-प्रदान का कार्य बराबर चलता रहा।

तमिल द्राविड़ भाषा परिवार की ज्येष्ठ भाषा है और संस्कृत की भांति वह भी सब प्राचीन शास्त्रीय भाषा Classical Language है। विद्वानों के मतानुसार यह लगभग 3000 वर्ष पुरानी भाषा है जिसमें लिखित साहित्य का निर्माण हुआ है। इसकी संस्कृति, सभ्यता, विभिन्न क्षेत्रों में तमिलों का व्यक्त चिन्तन, विचार आदि अभी तमिल प्रदेश से बाहर बहुत कम जाना पहचाना गया है। पाश्चात्य विद्वानों का विशेष अध्ययन जितना संस्कृत साहित्य के प्रति था, उतना तमिल संस्कृति और उसके साहित्य के प्रति नहीं रहा है, यह खेद की बात है। अवश्य ही कुछेक पाश्चात्य विद्वानों ने इसके प्रति ध्यान दिया है और माना है कि संस्कृत के समान तमिल साहित्य और उसकी संस्कृति भी प्राचीन है।

तमिल में इस समय उपलब्ध प्राचीन ग्रंथ एक लक्षण ग्रंथ है जिसका नाम 'तोलकाप्पियम' है। इसका रचनाकाल ई.पू. आठवीं शताब्दी माना जाता है। इसके रचयिता कवि का नाम है 'तोलकाप्पियर'। इस ग्रंथ का उल्लेख कर उनके प्रति अपना आभार प्रकट करते हैं जिसके आधार पर उन्होंने अपने इस लक्षण ग्रंथ की रचना की है। दुर्भाग्य से तोलकाप्पियम काल के पूर्व रचित विपुल साहित्य ग्रंथ इस समय अनुपलब्ध हैं, कालकवलित हो चुके हैं। केवल उनका नामोल्लेख मात्र हमें मिलता है। इसके आधार पर

विद्वानों का मानना है कि तमिल साहित्य कम से कम पांच हजार वर्ष प्राचीन है।

तोलकाप्पियम पाणिनीय व्याकरण की परंपरा या परिपाटी से भिन्न प्रकार का व्याकरण ग्रंथ है, लक्षण ग्रंथ है। इस पर पाणिनी के व्याकरण का प्रभाव नहीं पड़ा है। इसमें व्याख्यायित व्याकरण के नियम अपने आप में स्वतंत्र हैं। तमिल भाषा की प्रकृति, स्वभाव और संस्कारों-अनुरूप ही इस पर विचार हुआ है, यह निस्संदिग्ध रूप से प्रतिपादित हो चुका है। यह लक्षणग्रंथ 27 अध्यायों में तथा 1612 सूत्रों में विस्तार पाता है। सहस्राब्दियों से भी अधिक समय पूर्व की यह रचना व्याकरण, भाषा, मानव, भूगोल, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से अनेक प्रकार के अध्ययनों का मूल स्रोत-सामग्री (Source material) प्रस्तुत करती है। इसके अध्ययन से यह प्रमाणित किया गया है कि तमिल की एक स्वतंत्र काव्य-परंपरा थी जिसके आधार पर तमिल में काव्य शास्त्र और व्याकरण शास्त्र का विकास हुआ है।

प्राचीन तमिल और संस्कृत के बीच, भाषा, व्याकरणिक भेदों का केवल संकेतन मात्र करना यहां पर्याप्त होगा। क्योंकि इस विषय पर विस्तार में जाना इस लघु लेख में संभव भी नहीं है :-

1. तमिल में संज्ञा का रूप-विधान Morphology संस्कृत संज्ञाओं से भिन्न है।

2. इसी प्रकार क्रिया-रूप में भी Verb morphology में भी यह संस्कृत से भिन्न है।

3. तमिल में संज्ञा और क्रियाओं का वर्गीकरण बुद्धियुक्त तथा तर्क सम्मत हुआ है। उसमें प्राप्त संज्ञा के लिंग का विशिष्ट प्रकार का वर्गीकरण संस्कृत के लिए बिलकुल नया है।

4. स्वर-विज्ञान की दृष्टि से भी यह संस्कृत से भिन्न है।

5. और इसी प्रकार वाक्य संरचना की दृष्टि से भी इन दोनों भाषाओं में बड़ा अंतर पाया जाता है। इस प्रकार दोनों भाषाओं के अंतर को पहचानना अध्ययन के लिए आवश्यक है।

सांस्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टि से तमिल जनता पर, विशेषकर यहां के बुद्धिजीवियों पर संस्कृत का जो प्रभाव पड़ा है उसकी चर्चा करना आवश्यक है। तमिलों का यह स्वभाव रहा है और उनकी मानसिक प्रवृत्ति भी यही रही है कि जहां जहां से नये विचार, नया चिन्तन उन पर पड़ता है, उसे सोच-समझकर, विश्लेषित कर अपने जीवन के अनुकूल उसे स्वीकार करता रहा है। दो सहस्र वर्ष पूर्व तिरुवल्लुवर ने अपने नीतिग्रंथ 'तिरुक्कुरल' में इसे सूत्र शैली में व्यक्त किया है।

बहुत प्राचीन काल से ही तमिल साहित्य तमिलों की जीवन-शैली और उनकी विचार-धारा पर संस्कृत का प्रभाव परिलक्षित होता है। इसे हम दूसरे शब्दों में, द्रविड़ सभ्यता और संस्कृति पर आर्य सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव मानना उचित लगता है। प्राचीन तमिल साहित्य अर्थात् संगम कालीन साहित्य से लेकर सत्रहवीं शताब्दी तक के अनेकानेक भक्त कवियों के स्तोत्र गीतों से स्पष्ट रूप से जान सकते हैं। वैदिक धर्म और वैदिक संस्कृति का गहरा प्रभाव इन पर स्पष्ट है। यज्ञ संस्कृति यहां पनपने लगी और यहां के चेर, चोल, पांड्य राजाओं ने उसे प्रोत्साहित किया। प्राचीन संगम साहित्य में याग-यज्ञ के संबंध में सूचनायें विपुल मात्रा में प्राप्त हैं।

तोलकाप्पियम को प्रथम कविता 'पायिरम्' में यह उल्लेख प्राप्त है कि 'धर्मज्ञ, वेदपाठी महाविद्वान' अदंकोट्टु आसान की अध्यक्षता में एकत्रित विद्वत्सभा में मेरे इस ग्रंथ का प्रथम वाचन-तमिल में 'अरंगेट्रम्' हुआ है और विद्वानों द्वारा इस लक्षणग्रंथ को मान्यता प्राप्त है। इस ग्रंथ के प्रथम प्रकरण से विदित है कि वेदों की अति प्राचीनता और उसके विश्लेषित सूक्ष्म ध्वनियों की विशेषताओं से यहां के तमिल विद्वान खूब परिचित थे। तीसरे प्रकरण 'पोरुळ अधिकारम्' अर्थात् अर्थ प्रकरण में वेदों के संबंध में अनेक सूचनायें हमें प्राप्त होती हैं।

तमिल का संगम काल ई. पू. 500 से ई. सन् 100 तक माना जाता है। इस काल की कविताओं में वेदों तथा यज्ञों के संबंध में अनेकानेक उल्लेख मिलते हैं। गंगा नदी का सुन्दर वर्णन है, महाभारत का उल्लेख है। रामायण और महाभारत के संबंध में प्राचीन तमिलों को खूब जानकारी थी। तमिल प्रदेश के प्राचीन कालीन चेर, चोल, पाण्ड्य राजा बड़े धार्मिक और नीतिमान शासक थे। अपना राजकाज प्रारंभ करने के पूर्व राजसभा में उपस्थित वेद पाठी ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणों का वन्दन-अभिनन्दन कर तत्पश्चात ही अपना राजकार्य प्रारंभ करते थे। 'परिपाडल काव्य संकलन में तिरुमाल' विष्णु की वन्दना की गयी है। इसी काव्य संकलन की एक अन्य कविता में पुरुषसूक्त के विचार अभिव्यक्त हैं। वैदिक परंपरा के अनुसार काल गणना का उल्लेख है नृसिंह अवतार और हिरण्यकश्यप का विस्तार से उल्लेख है। मदुरै नगर के निवासी प्रातःकाल ब्राह्मणों द्वारा चतुर्विध वेदों के सस्वर पाठ की मधुर ध्वनि सुनकर ही अपनी निद्रा तजकर जग जाते थे।

प्राचीन काल में राजा, महाराजाओं के नेतृत्व में वेदज्ञानी ब्राह्मणों द्वारा यज्ञादि पुण्य कर्म होते थे। गायों की पूजा होती थी। महाभारत युद्ध में दोनों पक्ष वालों को भोजन बनाकर उन्हें खिलाने का उल्लेख प्राप्त है। चेर नरेश 'पेरुम् चोट्टु उदियन चेरलाद्दन' ने उन्हें भोजन खिलाया था। एक पाण्ड्य राजा 'पल्यागसालै मुदुकुडुमि पेरुवलुदि' की उपाधि से विभूषित था। अर्थात् अनेकानेक यज्ञ कराने वाले पेरुवलुदि थे।

संगमोत्तर काल का समय ई. सन् 100 से ई. 600 तक का है। कवि तिरुवल्लुवर रचित 'तिरुक्कुरल' का शीर्ष स्थान है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के चतुर्विध पुरुषार्थ में प्रथम तीन पुरुषार्थों को 1330 कुरल छन्दों में स्पष्ट किया गया है। एक तमिल कवि के अनुसार 'संस्कृत और तमिल इन दोनों भाषाओं के साहित्य के आलोड़न करने के उपरान्त यह कहना कठिन हो जाता है कि इन दोनों में श्रेष्ठ कौन है? संस्कृत का महत्व वेद, उपनिषद आदि के कारण है तो तमिल का महत्व तिरुक्कुरल के कारण।'

आगे तमिल साहित्य में, संगमोत्तर काल में, प्रबन्ध काव्यों की रचना होने लगी जिनमें दो प्रमुख प्रबंध काव्यों का उल्लेख करना यहां आवश्यक है। एक का नाम है 'शिलप्पादिकारम्' और दूसरे का नाम 'मणिमेखलै' इन दोनों काव्यों में वेद, उपनिषद के विचारों के साथ साथ अनेक पौराणिक कथाओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है। इसमें भी वेद विचार, विष्णु के अवतारों की महिमा की कथा-विस्तार के संदर्भ में गायी गयी है।

एक बात का उल्लेख करना यहाँ आवश्यक समझता हूँ। संस्कृत भाषा तमिलों के लिए उतनी ही नयी अजित भाषा है जितनी अंग्रेजी। तमिल भाषियों के लिए देवनागरी लिपि अपरिचित लिपि है। ध्वनि अक्षर, उनके उच्चारण भी उनके लिए कठिन हैं। विशेष प्रयास से उन्हें सीखना पड़ता है। परिवेश के अभाव में संस्कृत बोलना, लिखना भी बड़ी कठिनाई से होता है। विशेष प्रयास के साथ उसका अभ्यास किया जाता है।

खैर, तमिल साहित्य का भक्तिकाल ई. सन् सातवीं शताब्दी से लेकर नौवीं शताब्दी तक माना जाता है। इस युग में तमिल प्रदेश में शैव भक्त नायनमारों के नाम से प्रसिद्ध तिरसठ नायनमार शैव संत एवं आलवार के नाम से विख्यात द्वादश वैष्णव आलवार संतभक्त अवतरित होकर गांव-गांव में घूमकर अपने शैवमत एवं वैष्णव मत का प्रचार करते थे। शैव स्तोत्र गीत 16,000 से भी अधिक हैं जिनका संकलन 'तेवारम्' के नाम से विख्यात है तथा द्वादश वैष्णव आलवारों के स्तोत्र गीत संख्या में चार हजार 'पाशुरम्' (स्तोत्रगीत) हैं जिन्हें तमिल भाषा में 'नालायिर दिव्य प्रबन्धम्' कहते हैं। ये सारे

भक्ति तमिलभाषा में रचित ग्रंथ रत्न हैं। इनमें वेदों का निचोड़ है, सार है। उपनिषद और ब्रह्मसूत्र के विचारों का विश्लेषण-व्याख्या तमिल के है। ज्ञातृ, ज्ञेय और ज्ञान इन तीनों का समन्वित ज्ञान स्वरूप भगवान की स्तुति है। इन स्तोत्र गीतों में चर्चित मुख्य विषय रहा है। 'तिरुमूलर' कृत 'तिरुमंतिरम्' में ऋग्वेद का मंत्र 'एकम् सत् विप्रा बहुधा वदन्ति' की अनुगूंज है। इसमें संकलित तीन सहस्र पद एक ही छंद में रचे गये हैं। गायत्री मंत्र की व्याख्या हुई है। अष्टांग योग की चर्चा है, अष्ट महासिद्धियों की विस्तार से चर्चा है। कार्यसिद्धि के उपायों को भी इसमें स्थान प्राप्त है। वेद का रहस्य इसमें व्याख्यायित है। वेदान्त की भी व्याख्या हुई है। 'तत् त्वम् असि'-- इस महावाक्य के तात्विक अर्थ का विश्लेषण तिरुमूलर करते हैं। इस प्रकार वेद, वेदान्त, उपनिषद आदि आध्यात्मिक विषयों की सुन्दर व्याख्या-विश्लेषण काव्य के माध्यम से हुई है। तमिल भक्ति साहित्य का यह आधार ग्रंथ है, मेरुदण्ड है। तमिल साहित्य का तो यह गौरव ग्रंथ है।

परवर्ती युग अर्थात् दसवीं शताब्दी के बाद तमिल में रचित विख्यात ग्रंथ है 'कंब रामायणम्'। यह बारहवीं शताब्दी की रचना इसके रचयिता कवि कंबन हैं। यह वाल्मीकि रामायण का आधार लेकर तमिल भाषा में लिखा गया महाकाव्य है, मगर वाल्मीकि कृत रामायण का अनुवाद नहीं। अनेक स्थलों पर कवि कंबन की मौलिक उद्भावना इसमें दर्शित है। काव्य सौष्ठव एवं भाषा की गंभीरता से युक्त इस काव्य का तमिल साहित्य में अपना विशेष महत्व है। भाषा की दृष्टि से उदात्त तमिल काव्य शैली अर्थात् High poetry है। विल्लिपुत्तूरार नामक कवि ने महाभारत को तमिल में रचा है। यह भी संस्कृत महाभारत काव्य का अनुवाद न होकर पुनः सर्जन है recreation है। इसमें भी कवि का काव्य सौंदर्य, भाषा की गंभीरता तथा मौलिक उद्भावना प्राप्त है।

आधुनिक युग में तो तमिल के राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारती महाभारत की बहुचर्चित प्रमुख घटना पर आधारित 'पांचाली शपदम्' खण्ड काव्य लिखा जिसमें पांचाली-द्रौपदी को आधुनिक युग की विद्रोह चेतना संपन्न न्याय के लिए लड़ने वाली नारी के रूप में चित्रित किया है। कवि भारती का नया दृष्टिकोण इसमें द्रष्टव्य है।

भक्ति युग में अनेकानेक मंदिर निर्मित हुए और तमिल प्रदेश में मंदिर संस्कृति पनपने लगी। तमिल संस्कृति एक प्रकार से मंदिर संस्कृति है Temple Culture. Temple centric culture है। इन मंदिरों में वेद पाठ की मधुर ध्वनि प्रतिदिन गूंजती रहती है। तमिल के भक्तिगीत 'तेवारम्' और 'दिव्य प्रबन्धम्' के पाशुरम गीत मधुर ध्वनि में नित प्रति गाने की परिपाटी प्रचलित हुई। मंदिर में छः वेला की पूजा, अर्चना का विधिविधान आगम पद्धति का अनुसरण कर हुआ। आचार्यों के संस्कृत में ही 'अष्टोत्तरम्' या 'सहस्रनाम' की अर्चना का विधान हुआ जिसमें प्राचीन परंपरा का पालन आज तक तमिल प्रदेश के मंदिरों में होता आ रहा है। तमिल प्रदेश में प्राचीन परंपराओं का अखण्ड पालन होता आ रहा है। उसके लिए यहां का सामाजिक परिवेश भी अनुकूल रहा है। तमिल साहित्य में प्राप्त भक्ति गीत एवं भक्ति चिन्तन शुद्ध भारतीय भक्ति परंपरा एवं वेद-वेदांगों से गहरे रूप से प्रेरित एवं प्रभावित है। शिव-भक्तों के लिए शिवजी ज्ञानातीत और वचनातीत है, वेदों द्वारा भी उसका वर्णन संभव नहीं, वह शब्दातीत भी है। इन शैव वैष्णव भक्तों की प्रमुख विशेषता यह रही कि वे अधिकतर तमिल के साथ साथ संस्कृत के भी पारंगत विद्वान, महापंडित थे और आज भी है। संस्कृत के धार्मिक-आध्यात्मिक साहित्य के गहन, गंभीर अध्ययन, आलोड़न के परिणामस्वरूप उनके पदों में उपनिषद-सम गांभीर्य भी प्राप्त है। तमिल विद्वान इन गीतों को रहस्यवादी अनुभूति के रूप में मानते हैं। तमिल भाषा में रचित विपुल मंडित स्तोत्र गीतों की भांति भारत की अन्य किसी भी भारतीय भाषा में नहीं लिखा गया है। स्मरण रहे कि इन सबका मूल आधार संस्कृत का वैदिक साहित्य, उपनिषद, ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता आदि महान ग्रंथ हैं। यह तो स्पष्ट है कि तमिल का समस्त भक्ति साहित्य ही, वेद, वेदांगों, उपनिषदों का सार है, निचोड़ है, मगर है तमिल भाषा में।

दुर्भाग्य से यह सारा विषय आज तक हिन्दी विद्वानों और पाठकों तक पूरी तरह से पहुंच नहीं पाया है। हमने अब तक उन्हें नहीं पहुँचाया है, दोष हमारा है। इस कारण तमिल का भक्ति साहित्य सिर्फ तमिल प्रदेश तक सीमित रह गया है। इसका भारतीय राष्ट्रीय साहित्य संपदा के रूप में जुड़ जाना आवश्यक है। इसके लिए विशेष प्रयत्न की आवश्यकता है।

आधुनिक काल में तमिल का यह राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारती वेद, उपनिषद आदि भक्ति संबंधी अध्यात्म संबंधी संस्कृत ग्रंथों के 'आर्य संपत्ति' के रूप में तहे दिल से स्वीकार कर उन्हें अपने गीतों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है। उनका राष्ट्रकवि का रूप उनके व्यक्तित्व का एक पहलू है तो भक्ति गीत उनके भक्त हृदय एवं रहस्यवादी चेतना का दूसरा पहलू है। पतंजलि के योगसूत्रों का तमिल रूपान्तर काव्य शैली में प्रस्तुत किया है। श्रीमद्भगवद्गीता का भी आपका तमिल काव्यानुवाद प्रभावी रहा है। उनका निम्नलिखित गीत वैदिक विचारों से पुष्ट है :-

'हे माता! प्राचीन काल में संसार के लिए
सुनिश्चित, सुदृढ़ शब्दों के माध्यम से
तूने वेदों, उपनिषदों एवं प्रसिद्ध
पुराण, इतिहास आदि अनेकानेक ग्रंथों में
ज्ञान का जो प्रकाश हमें दिया
उसकी महिमा गाते हम नहीं अघाते
आज के युग में उसी का प्रकाश हमें
मार्ग दर्शन कर रहा है! कालजयी
रचनाओं द्वारा ईश्वर की विजय हुई है।'

भारती ने अपने अनेकानेक गीतों में प्राचीन भारत की महिमा, गौरव गरिमा, वेद, उपनिषद, गीता आदि की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। भारती संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे।

यहां शैव एवं वैष्णव भक्ति गीतों की व्याख्या-टीकाओं के संबंध में थोड़ी सी चर्चा करना जरूरी समझता हूं। बारहवीं शताब्दी से लेकर तमिल के आचार्यों ने यह अद्भुत कार्य किया है। भाष्य एवं टीकाओं की रचनाएँ प्रचुर मात्रा में हुई हैं। ये टीकाकार तमिल भाषा के अतिरिक्त संस्कृत के भी उद्भट विद्वान और दर्शन शास्त्र के विशेष अध्येता भी थे। अतः तमिल भक्ति साहित्य के लिए अनेकानेक टीकाएं संस्कृत में लिखी गयीं। भाष्य लिखे गये। संस्कृत के अनेक क्लिष्ट दार्शनिक शब्दों और पदों तमिल भाषा में प्रयोग होने लगा। अतः उनकी टीकाओं की भाषा मणि प्रवाल शैली में है जिसमें संस्कृत और तमिल शब्दों और पदों का मणिकांचन संयोग द्रष्टव्य है।

शैवमतानुयायी भक्तों की मान्यता है कि वेद और आगम शास्त्र का विशेष महत्व है। मंदिरों में प्रतिष्ठित मूर्तियों का निर्माण, पूजा का विधि-विधान इत्यादि आगम-शास्त्र पद्धति के अनुसार ही आज तक चलता आ रहा है। केवल तिरुपति वेंकटेश्वर-बालाजी मंदिर में पांचरात्र आगम का पालन हो रहा है।

शैवों के अनुसार वेद सामान्य धर्म का प्रतिपादन करता है जबकि आगम शास्त्र विशिष्ट धर्म का विश्लेषित करता है।

यहां भक्ति, धर्म, दर्शन के प्रचार-प्रसार के निमित्त निर्मित अनेकानेक शैव, वैष्णव मठों और आधीनों की महत्वपूर्ण सेवा का उल्लेख करना आवश्यक होगा।

प्राचीन काल में हमारे यहां राजा-महाराजाओं ने मंदिरों आलयों में तमिल शैव स्तोत्र गीत-- 'तेवारम्'

-- तथा वैष्णव संतगीत 'दिव्य प्रबन्धम्' के पाशुरों के गायन की व्यवस्था कायम की है। इन भक्तों ने वेद पाठ की भी सुन्दर व्यवस्था-कायम की है। यह परंपरा भी निरन्तर अटूट चली आ रही है। तमिलनाडु के मंदिरों में, उत्सव, पर्व के विशेष अवसरों पर, विशेषकर मंदिर के वार्षिकोत्सव के अवसर पर भगवान की उत्सव-मूर्ति की भव्य शोभा यात्रा निकलती है। इस अवसर पर वेद पाठी ब्राह्मण वेदपाठ का सस्वर गायन करते हुए उत्सव-मूर्ति का अनुगमन करते हैं, तो ओदुवार लोग तेवारम गीतों का सस्वर गायन करते हुए तथा वैष्णव भक्त नम्माळ्वार आदि दिव्य प्रबन्धम् के पाशुरों का गायन करते हुए चली आती है। यह भव्य परंपरा शताब्दियों पूर्व की सुन्दर परंपरा है जो आज अटूट चली आ रही है। दर्शकों एवं भक्तों के मन में भक्तिभाव को प्रेरित करने वाला यह भव्य एवं आकर्षक दृश्य है। मंदिरों के अंदर आध्यात्मिक उन्नति हेतु वेद पाठशालाएँ, तेवारम् पाठशालायें निर्मित थीं। संस्कृत की शिक्षा देने के निमित्त घटिकायें भी होती थीं। वेद, उपनिषद, कल्पसूत्र आदि की व्याख्या, विश्लेषण के निमित्त समय समय पर चर्चायें, व्याख्यान या वाद-विवाद आदि की व्यवस्था की गई। इन्हें तमिल में 'पट्टिमन्दरम्' अर्थात 'विवाद मण्डप' कहते हैं।

परवर्ती युग में तमिल साहित्य में पुराणों की रचना होने लगी। 17वीं शताब्दी को 'पुराण-युग' मानना सही होगा। संस्कृत में इतिहास, पुराण ग्रंथों की रचना की परंपरा चल पड़ी। संस्कृत में रचित इन पौराणिक कथाओं से प्रभावित होकर तमिल में भी पुराण काव्य रचने की परंपरा चल पड़ी। इनमें संस्कृत में प्रयुक्त कथानक रूढ़ियों के प्रयोग के अतिरिक्त संस्कृत शब्दों का भी अधिकाधिक प्रयोग करते हुए तमिल में पुराण लिखे गये। विशेषकर धर्म संबंधी वाद-विवाद चर्चायें, विचार आदि को समझाने के निमित्त संस्कृत शब्दों और पद प्रयोगों का निस्संकोच होने लगा। श्रमणों द्वारा संस्कृत ग्रंथों का आधार लेकर लिखे गए तमिल पौराणिक ग्रंथों में संस्कृत शब्दों का प्रचुर मात्रा प्रयोग हुआ। एक प्रकार से इस काल को 'तमिल पौराणिक काल' कहना सही होगा।

ऐसे पुराणों में दस हजार छन्दों में रचित 'कन्द पुराण काव्य (स्कन्द पुराण) का विशेष महत्व है। संस्कृत में रचित 'शिवशंकर संहिता' के आधार पर दस हजार से भी अधिक छन्दों में तमिल पुराण लिखा गया। श्रीमद्भागवतम् के आधार पर तमिल में पांच हजार छन्दों में काव्य रचना हुई। कालिदास कृत 'रघुवंशम्' का तमिल अनुवाद 2450 छन्दों में किया गया। महाभारत के उपाख्यान 'नल-दमयंती' कथा के आधार पर सुन्दर 'वेण्बा' छन्द में 'नळवेण्बा' की रचना हुई। एक दूसरे कवि अतिवीर रामपांड्य नामक राजा ने इसी कथा को वृत्त छन्द में प्रस्तुत किया उन्होंने कूर्मपुराण और लिंग पुराण का तमिल रूपान्तर प्रस्तुत किया। वीरक विराव ने हरिश्चन्द्र पुराण लिखा। मत्स्य पुराण का तमिल अनुवाद हुआ। मंदिरों पर स्थल पुराणों की रचना हुई। संस्कृत के महापुराण का पूर्ण अनुवाद या रूपान्तर प्रस्तुत किया गया। 'भागवतम्' के दो अनुवाद हुए। ये सारे ग्रंथ काव्यानुवाद हैं, पद्यानुवाद हैं।

इनके अतिरिक्त संस्कृत में रचे गये कुछेक ग्रंथ भी मिलते हैं। विशेषकर शैवों में यह प्रवृत्ति परिलक्षित है। पूर्व काल में वैष्णव धर्मावलंबी विद्वान ही मणि प्रवाळ शैली में लिखा करते थे। पूजा-पद्धति उसका विधि-विधान, क्रिया मार्ग आदि को स्पष्ट करते हुए महेशान संवेश्वर नामक शैवाचार्य ने संस्कृत में ग्रंथ रचना की। शिवयोगी ने संस्कृत में अधिक रचनायें कीं 'क्रियादीपिका', 'शैव संन्यास पद्धति' ये दोनों ही शिवाग्र भाष्य इनके रचित संस्कृत ग्रंथ हैं। शिवाग्र योगी ने अरुणनंदि शिवाचार्यजी कृत 'शिवज्ञान सिद्धि' नामक शैवशास्त्र का दार्शनिक ग्रंथ लिखने के लिए मणिप्रवाळ शैली में अतिविस्तृत टीका लिखी। सुप्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान एवं संस्कृत-कवि उद्दण्डनरूम् अप्पय दीक्षित श्री नीलकंठ शिवाचार्य के ब्रह्मसूत्र के लिए शैवभाष्य लिखा। अप्पय दीक्षितजी ने संस्कृत में 'कुवलयानन्दम्' नामक अलंकार शास्त्र की रचना की। सातवीं-आठवीं शताब्दी में पल्लव शासनकाल में कवि दण्डि ने 'काव्यादर्शम्' नामक काव्यशास्त्र ग्रंथ संस्कृत में लिखा। कवि भारवि ने अनेक संस्कृत नाटकों की रचना की। ये दोनों कवि विद्यानगरी के नाम से प्रसिद्ध कांचीपुरम् के निवासी थे और प्रसिद्ध पल्लव नरेश महेन्द्र वर्मन् पल्लव के शासनकाल में राजकवि के रूप में समादृत थे।

उपर्युक्त विवरणों से यह स्पष्ट है कि तमिल प्रदेश में संस्कृत का प्रवेश, उसका अध्ययन आदि का गहरा प्रभाव deep penetration लगभग पच्चीस शताब्दियों से भी पूर्व हो चुका था। उसका प्रभाव विभिन्न क्षेत्रों में, काव्य एवं साहित्य पर, पुराण साहित्य पर दार्शनिक ग्रंथों की रचना के रूप में, तमिलनाडु अलंकार शास्त्र के रूप में देखा जा सकता है। तमिलनाडु का जहां तक संबंध है यहां के ब्राह्मणों ने संस्कृत का अध्ययन ही नहीं, पोषण भी किया, आज भी सरकार की संस्कृत विरोधी नीति के बावजूद वह तमिलनाडु में जीवित है।

निष्कर्ष :

प्राचीन काल के तोलकाप्पियम काव्य हमें स्पष्ट समझाता है कि तमिल प्रदेश में संस्कृत एवं आर्यों की संस्कृति की नींव पड़ गयी थी। आर्य संस्कृति के अनेक संस्कार, रीतिरिवाज, रस्मों का उसमें उल्लेख मिलता है। तोलकाप्पियम काल के पश्चात के संगम काल एवं संगमोत्तर कालीन तमिल काव्यों के सूक्ष्म अध्ययन एवं विश्लेषण से यह विचार दृढ़ होता है कि आर्यों के वेद-सम्पन्न यज्ञ-यज्ञों के संस्कार क्रमशः तमिलों के जीवन में तथा उनके संस्कारों में घुलमिल गये हैं। लेकिन यह बात केवल नगर निवासियों और बुद्धिजीवियों तक ही सीमित थी। आम जनता एवं ग्रामवासी इन प्रभावों से अछूते अलग रहे। उन पर संस्कृत का प्रभाव नगण्य है।

यहां के शासक भी उत्तर भारत के राजा महाराजाओं की भांति अपने को 'सूर्यवंशी' और 'चन्द्रवंशी' कहलाने में अपना बड़प्पन मानते थे। धीरे-धीरे उनमें यज्ञ संस्कारों का विश्वास बढ़ने लगा। वेदपाठी ब्राह्मणों ब्राह्मण पुरोहितों को अपने राजपुरोहितों के रूप में नियुक्त कर उन्हें सम्मान प्रदान करते थे। तमिलों के शादी-विवाह, धार्मिक आचारों, रस्म-रिवाजों पर आर्यों के संस्कार पड़ने लगा।

यहां के राजा महाराजाओं ने मंदिरों में तमिल भक्तिगीतों के साथ-साथ वेदज्ञान की भी व्यवस्था की थी। कुलोत्तुंग शंकरन् नामक चोल राजा ने लगभग 500 मंदिर पुरोहितों को परिवार सहित वेदज्ञान की शिक्षा देने, संस्कृत की शिक्षा प्रदान करने के हेतु 'वेंगिनाडु' (आंध्र प्रदेश) भेजा था, इसका उल्लेख ताम्र पट्टयम में प्राप्त है। तमिल पण्पाडु वरलारु-पृ.110)

व्यक्ति और समाज की आध्यात्मिक उन्नति एवं विकास के निमित्त वेद, उपनिषद, इतिहास, पुराण, आगम शास्त्र, संस्कृत के स्तोत्र गीतों में निश्चित शिक्षा पाने के निमित्त मंदिरों में उचित व्यवस्था की गई। इतिहास में इस बात का उल्लेख है कि राजा, महाराजा एवं रानी-राणी व्यक्तियों ने इसकी व्यवस्था की थी। तंजाऊर जिले के मंदिरों में व्याकरण की शिक्षा प्रदान करने हेतु अनेक पाठशालाएं निर्मित थीं। व्याकरण शास्त्र की शिक्षा देनेवाले मंडप को व्याकरण दान मण्डप कहते थे। प्राप्त शिलालेखों में इसका उल्लेख हमें प्राप्त है। वैदिक संस्कार, आचार-विचार, इतिहास, पुराणों की कथायें आदि तमिलों द्वारा यहां मान्यता प्राप्त हुईं। उत्सव, पर्व, व्रतादि और तत्संबंधी रस्म बढ़ते गये। विवाह आदि रस्म भी आर्य संस्कृति के अनुसार प्रचलित होने लगे। तमिल में रचित पंच महाकाव्यों में एक का नाम है 'जीवक चिन्तामणि', यह जैन कवि द्वारा रचित है। इस काव्य में उल्लिखित धर्म-कर्म, आचार-विचार आदि हिन्दू धर्म के अनुसार है। काव्य का नायक जीवकन् और नायिका गन्धर्वदत्ता का विवाह हिन्दू धर्मशास्त्र के विधि-विधान के अनुसार हुआ, जिसका भव्य चित्रण काव्य में किया गया है। अतः यह कहना सही है कि तमिल साहित्य ने चारों वेदों का स्वीकार किया, यहां के राजा महाराजाओं ने स्वीकार किया, यहां

को तमिल संस्कृति पर उसका गहरा प्रभाव पड़ा।

कवि चक्रवर्ती के नाम से विख्यात कंबन ने अपनी रामायण में राम के अवतार का उद्देश्य बताते हुए लिखते हैं (सुन्दरकाण्डम-8।)

'धर्म की सुदृढ़ स्थापना हेतु, वेदों में व्यक्त नीति की महिमा को समझकर, संसार उनका पालन करने हेतु, संसार के सन्मार्ग में चलाने के निमित्त, अत्याचारियों का विनाश करने के निमित्त, तथा सदस्य लोगों के दुख को मिटने के लिए, इस संसार में अवतरित हुए। उनके पाद-पद्मों में नमन करने वालों के लिए, सांसारिक बन्धनों से उन्हें मुक्ति दिलाने की कृपा करेंगे।'

अंत में, भारत देश को सांस्कृतिक दृष्टि से एकता के सूत्र में पिरोने एवं सांस्कृतिक चेतना एवं उसके उत्कर्ष को उत्पन्न करने में संस्कृत भाषा और उसमें रचित साहित्य ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। संस्कृत ने समस्त भारतीय भाषाओं को जोड़ने का जबरदस्त कार्य किया है। इसने भारतीय भाषाओं को दिया भी और साथ ही उनसे लिया भी। आदान प्रदान का महत्वपूर्ण कार्य आज भी निरंतर चलता ही रहता है।

किसी भी प्रदेश में बाहरी प्रभाव के कारण कुछ हित और कुछ अहित भी दर्शित होते हैं। संस्कृत के तमिल प्रदेश को भाषा और उसकी प्राचीन संस्कृति पर पड़े प्रभाव से उत्पन्न हितों की चर्चा अब तक विस्तार से की गई है, वहां उस प्रभाव से इस प्रदेश पर पड़े अहित की भी चर्चा करना आवश्यक होता है। दक्षिण भारत की द्राविड़ भाषायें संरचना एवं प्रयोग की दृष्टि से आगे भाषा का समूह की संस्कृत से बहुत कुछ भिन्न है इसे समझना होगा। तमिलों के लिए संस्कृत भाषा की ध्वनि, अक्षर और उसका सही उच्चारण में बड़ी कठिनाई महसूस होती है। वह तमिलों के लिए उतनी ही नयी अर्जित भाषा है जितना अंग्रेजी। फिर भी यहां के उच्चवर्ग के ब्राह्मणों ने उसे स्वीकार किया और उसके साहित्य से वे अभिभूत भी हो गये इसे ऊपर के विवरणों से स्पष्ट किया गया है।

मगर उसके अतिक्रमण से, अतिशय प्रभाव से तमिल समाज, तमिल भाषा को जो हानियां हुई हैं उन पर भी ध्यान देना और उसकी चर्चा करना आवश्यक है। यहां के संस्कृत जानकार लोगों ने, विशेषकर ब्राह्मण वर्ग यहां के स्थानों, व्यक्तियों, मंदिरों, मंदिरों में प्रतिष्ठित देवमूर्तियां आदि के प्रचलित तमिल नामों की जगह पर संस्कृत नाम देकर उसे बदलने में प्रवृत्त हुए। उदाहरण के लिए 'मुदुकुन्रम्' नामक स्थान को संस्कृत में बदलकर 'वृद्धाचलम्' कर दिया। आज उसके मूल नाम से अधिकतर तमिल निवासी अपरिचित हो गये। 'तिरुवरंगम्' स्थान का नाम संस्कृत में श्रीरंगम कर दिया गया और वही नाम आज तक यहां प्रचलित नाम हो गया। 'तिरुमरैक्काडु' वेदारण्यम हो गया, 'काञ्चडुकण्णिनम'-- देवी का नाम 'नयननरदेशम' हो गया, 'अंगयरक्कण्णि' मीनाक्षी हो गया, 'चोक्कनाथर'-- सोमसुन्दरेश्वर में बदल गया। आज उन पुराने प्रचलित तमिल नामों को कोई भी स्मरण नहीं करता। इस प्रकार स्थानों के नाम, देवमूर्तियों के नाम, व्यक्तियों के नाम बदल जाने पर उनके पुराने परिचित तमिल नामों को कोई भी स्मरण नहीं करता। यह एक तरह से अतिक्रमण नहीं तो और क्या? मंदिरों में देव मूर्तियों की अर्चना, पूजा वगैरह केवल संस्कृत में होती है, उसकी सुदीर्घ परंपरा आज भी चलती आ रही है। मंदिरों में घटिकायें ही अधिक प्रचलित हो गयी है। संस्कृत की शिक्षा एवं धार्मिक शिक्षा दी जाती है। इसके परिणामस्वरूप तमिल का विकास अवरुद्ध हो गया। यह तमिल भाषा और उसकी हानि नहीं तो और क्या है?

परवर्ती काल में संस्कृत के अतिक्रमण का जोरों से विरोध होने का संस्कृत के अतिशय प्रभाव के कारण प्रदेश का अहित भी हुआ। सामाजिक दृष्टि से ब्राह्मणों का वर्चस्व रहा, यही इसका मूल कारण लगता है।

संक्षेप में इस निबन्ध में तमिल प्रदेश, तमिल भाषा, उसके साहित्य और उसकी संस्कृति पर पड़े संस्कृत के प्रभाव को दर्शाने का एक लघु प्रयास हुआ है।

गुरु कृपा
प्लॉट नं. 790, डॉ. रामास्वामी सलाई
के. के. नगर (पश्चिम) चेन्नई - 600078
फोन - 044-23663425
मो. - 9840848559

प्राचीन राजस्थान में मनोरंजन

डॉ. सतीश कुमार त्रिगुणायत
श्रीमती रेखा देवी शर्मा

मनुष्य के मानसिक एवं शारीरिक विकास हेतु मनोरंजन अत्यन्त आवश्यक है, इस कारण प्राचीनकाल से ही भारतीय समाज में मनोरंजन एवं आमोद-प्रमोद का विशिष्ट स्थान रहा है। विभिन्न प्रकार के खेल कूद, आखेट, घुड़दौड़ आदि तत्कालीन समाज में प्रचलित थे। मुख्य रूप से मनोरंजन के साधनों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है-- शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक। शरीर को स्वस्थ एवं सबल बनाये रखने के लिए दौड़, कुश्ती, नाना प्रकार के खेल-कूद एवं आखेट की व्यवस्था हुई। मानसिक शक्तियों को विकसित करने के लिए नृत्य, संगीत, नाटक, अभिनय, कविता पाठ, आख्यान, कहानी, कथा आदि की प्रथा तथा कतिपय बुद्धिचातुर्य से सम्बन्धित खेल जैसे चौपड़, शतरंज, अक्षयिका आदि का आविष्कार हुआ। आध्यात्मिक शक्ति की अभिवृद्धि के लिए यज्ञ, हवन, पूजा-पाठ, दर्शन, यात्रा शृंगार आदि का प्रचलन हुआ। मनोरंजन के उपर्युक्त साधनों का यदि विश्लेषण किया जाये तो यह प्रतीत होता है कि सभी का ध्येय कुछ समय के लिए मानव के थके हारे मन को वास्तविक संसार के अभाव-अभियोगों से हटाकर कल्पना के लोक की सैर कराने का है जिससे क्षणिक परिवर्तन के द्वारा उत्साह भरा मन लेकर पुनः संसार सागर को पार करने में जुट जाये।

भारतीय जन-जीवन में प्रारम्भ से ही आमोद-प्रमोद का महत्त्व रहा है। राजस्थान का जन-जीवन भी इसका अपवाद नहीं रहा। यहाँ के लोग भी अतीव उत्साह एवं उमंग के साथ उत्सवों का आयोजन करते एवं विविध क्रीड़ाओं एवं मनोविनोद के साधनों से अपना मनोरंजन करते। हरिभद्रसूरि की '**समराइच्चकहा**' एवं '**धूर्ताख्यान**', उद्योतनसूरि की '**कुवलयमाला**', भीनमाल निवासी माघ के '**शिशुपाल वध**' तथा प्रतिहार नरेश महेन्द्रपाल (ई. सन् 890-910 ई.) एवं उसके पुत्र महीपाल (ई. सन् 910-948 ई.) के राजकवि राजशेखर की कृतियां (कर्पूरमंजरी, विद्धशालभंजिका, बालरामायण, बालभारत एवं काव्यमीमांसा) के अतिरिक्त सिक्कों, मूर्तियों, विभिन्न स्थलों के उत्खनन से प्राप्त खिलौनों एवं तत्कालीन अभिलेखों से प्राचीन राजस्थान में मनोरंजन पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

कालीबंगा, आहाड़, सांभर, रेढ़, बैराठ, रंगमहल, नलियासर आदि के उत्खनन से विदित होता है कि मिट्टी के खिलौने, चकरे, गाड़ी, गुड़ियाँ, गोलियाँ विभिन्न पशु एवं पक्षी आदि बच्चों के मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। संभवतः इसी कारण इन्हें प्रचुर मात्रा में बनाया गया था। यद्यपि पाषाण काल में आखेट उदरपोषण से सम्बन्धित था किन्तु उस समय यह मनोरंजन का माध्यम भी अवश्य रहा होगा। वैदिककाल में आखेट की गणना मनोरंजन के प्रमुख साधनों में होती थी। इस युग में लोगों द्वारा धनुष-बाण से जंगली पशुओं के शिकार का उल्लेख मिलता है।' 'कामसूत्र' में भी आखेट की गणना मनोविनोद के अन्तर्गत की गई है।' **'रामायण' एवं 'महाभारत'** में आखेट के पर्याप्त उल्लेख मिलते हैं। **'समराइच्चकहा'** में राजा-महाराजाओं द्वारा मनोरंजन के लिए आखेट पर जाने का उल्लेख मिलता है।' इसी प्रकार वि.सं. 898 के चण्डमहासेन के धौलपुर अभिलेख में भी घने जंगल, विभिन्न पशुओं एवं आखेट का उल्लेख हुआ है।' राजस्थान के विभिन्न स्थलों से प्राप्त आहत सिक्कों पर उत्कीर्ण त्रिशूल एवं धनुष बाण तत्कालीन समाज में आखेट की लोकप्रियता का अंकन देते हैं। इसी प्रकार गुप्त शासकों के सिक्के जो राजस्थान में रेढ़ एवं सायला-सुखपुरा (टोंक), मोरोली एवं सांभर (जयपुर) तथा नगला छैल (बयाना भरतपुर) आदि स्थानों से प्राप्त हुए हैं। उन पर भी आखेट के दृश्य उत्कीर्ण हैं। समुद्रगुप्त के व्याघ्रनिहन्ता प्रकार के सिक्के, चन्द्रगुप्त द्वितीय के 'सिंहनिहन्ता प्रकार' के सिक्के तथा कुमार गुप्त के इन दोनों प्रकार के सिक्कों के अतिरिक्त खड्गनिहन्ता प्रकार के सिक्कों से इन शासकों की सैनिक विजयों के अतिरिक्त इनके मृगया प्रेम को भी स्पष्ट करते हैं। राजशेखर द्वारा 'काव्यमीमांसा' में भोज्य पदार्थों में हिरण एवं शूकर के मांस का उल्लेख उस समय आखेट के प्रचलन को ही स्पष्ट करता है।' राजशेखर ने **'बालरामायण' एवं 'बालभारत'** में भी आखेट के अनेक प्रसंगों का वर्णन किया है। इन सभी उल्लेखों से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन राजस्थान में भी आखेट एक लोकप्रिय मनोरंजन था। आखेट से न केवल उदरपूर्ति संभव थी अपितु आखेट को जाने वाले उत्साही पुरुषों को निश्चय ही आनन्दानुभूति भी अवश्य होती होगी।

संगीत मनोरंजन का एक अन्य महत्वपूर्ण साधन है। गायन, नर्तन एवं वादन के समाहार को संगीत कहा जाता है। संगीत की परम्परा उतनी ही प्राचीन है जितनी मानव जाति। आदिम मानव भी यदा-कदा उल्लास में उछलता-कूदता था, मुख से विचित्र प्रकार की ध्वनि निकालता था और पत्थरों अथवा औजारों को एक-दूसरे से बजाता था। संगीत का यह आदिम रूप संसार की आदिम जातियों में आज भी पाया जाता है। संगीत प्रारम्भ से ही मनोरंजन का साधन रहा है। **वैदिक साहित्य** में नृत्य, गान एवं वाद्य के माध्यम से नर-नारियों द्वारा मनोरंजन करने का उल्लेख मिलता है।" वेदों की ऋचाओं को कंठस्थ करके लयपूर्वक गायन आर्यों को गायन में रुचि का स्पष्ट प्रमाण है। उनके गायन का सबसे प्रबल प्रमाण सामवेद है। **'ऋग्वेद'** में वीणा, करताल, दुंदुभी, शंख, कर्करी, नाड़ी, आघाट, मृदंग आदि अनेक प्रकार के वाद्ययंत्रों का भी उल्लेख हुआ है।' 'कामसूत्र' में संगीत की गणना 64 कलाओं के अन्तर्गत की गई है।" प्राचीन राजस्थान में भी संगीत मनोरंजन के महत्वपूर्ण माध्यमों में से एक था। जन्मोत्सव, विवाहोत्सव, वसन्तोत्सव आदि के समय वाद्य गोष्ठी, नाट्य प्रदर्शन आदि के साथ संगीत का भी आयोजन किया जाता था। **'समराइच्चकहा'** में संगीत कला के अन्तर्गत नृत्यकला को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।" नृत्य, गीत और वाद्य की लय, ताल और ध्वनि के आधार पर किया जाता था। राजशेखर ने **'कर्पूरमंजरी'** में वट सावित्री पर्व के उल्लासमय अवसर पर स्त्रियों द्वारा किए जाने वाले चर्चरी नृत्य का वर्णन किया है।' इस नृत्य में नायक

के माध्यम से विभिन्न दृश्यों का अभिनयात्मक रूप प्रस्तुत किया जाता था। प्राचीन राजस्थान के अभिलेखों तथा मूर्तियों में भी संगीत कला के प्रमाण प्राप्त होते हैं। चाटसू अभिलेख में सुमंत्रभद्र को नाट्यशास्त्र के प्रवर्तक भरतमुनि में प्रेम रखने वाला तथा नृत्यकला में प्रवीण बताया गया है।" राजस्थान के अनेक पूर्व मध्यकालीन मंदिरों में विभिन्न वाद्यों के साथ नृत्यरत दृश्यों का अंकन मिलता है। सीकर के हर्षनाथ मंदिर की नृत्यरत प्रतिमाएँ राजकीय संग्रहालय, सीकर में प्रदर्शित हैं।' भरतपुर के राजकीय संग्रहालय में भी नृत्यरत शिलाफलकों को देखा जा सकता है।' प्राचीन राजस्थान में अश्व नृत्य के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं। वि.सं. 1056 के किणसरिया अभिलेख में चच्च को तुरंग नृत्य (अश्व को नृत्य कराना) में प्रवीण बताया गया है।' **हरिभद्रसूरि के 'धूर्ताख्यान'** में भी अश्व नृत्य का उल्लेख मिलता है।"

नृत्य एवं गान में वाद्य का महत्वपूर्ण योग रहा है। 'समराइच्चकहा' में वीणा, शृंग, भेरी, बाँसुरी, मंजीर, शंख, ढोल, मृदंग, झल्लरी आदि अनेक प्रकार के वाद्य यंत्रों का विवरण मिलता है।" 'कुवलयमाला' में भी अनेक वाद्ययंत्रों का उल्लेख मिलता है। राजशेखर ने अपनी कृतियों में वेणु, वीणा, मृदंग, अंकयमोद, आलिंग्यक, उर्ध्वक, कांस्य, ताल, तूर्य, हुडुक्का एवं नूपुर आदि का उल्लेख किया है।" वि.सं. 718 के शंखियाला के चतुर्थ शाख्य लेख में कक्कुक को प्रिय लगने वाली वस्तुओं में वीणा एवं काकली गीत का भी उल्लेख है।"

'समराइच्चकहा' में नाटक, काव्य एवं नृत्य के साथ-साथ छन्द रचना को भी मनोरंजन का साधन बताया गया है।' 'कामसूत्र' में नाटक एवं आख्यायिका के साथ छन्द ज्ञान को भी कला के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है।' राजस्थान के प्राचीन अभिलेखों में वैतालिकों (स्तुति गायकों) के भी उल्लेख मिलते हैं। वि.सं. 703 के सामोली लेख' तथा राजशेखर की **'बाल रामायण'** में वैतालिकों की चर्चा मिलती है।' वि.सं. 894 के बाउक के लेख में कक्क को रुचि भाषाओं में कविता करने वाला बताया गया है।"

'समराइच्चकहा' में अनेक स्थलों पर नाट्य कला का वर्णन प्राप्त होता है। नाटकों के मंचन के लिए नाट्यशालाएँ होती थीं" जहाँ उसके पात्र संगीत, नृत्य एवं वाद्य के माध्यम से नाट्य कला का प्रदर्शन करते थे। राजपरिवार एवं धनाढ्य वर्ग के अन्तःपुर में अलग से नाट्यशालाएँ होती थीं जहाँ स्त्रियाँ अपना मनोरंजन करती थीं। इस समय अनेक नाटकों की भी रचना हुई। राजशेखर ने रामायण एवं महाभारत के कथानक के आधार पर क्रमशः 'बालरामायण' एवं 'बालभारत' आदि नाटकों की रचना की। इसी प्रकार चौहान नरेश विग्रहराज चतुर्थ (बीसलदेव) ने 'हरिकेलि' नाटिका की रचना तथा उसके दरबारी कवि सोमदेव ने 'ललित विग्रहराज' नाटक की रचना की।

तत्कालीन साहित्य एवं अभिलेखों में और भी अनेक क्रीड़ाओं के उल्लेख मिलते हैं जो तत्कालीन समाज में पर्याप्त लोकप्रिय थीं। इन क्रीड़ाओं में कन्दुक क्रीड़ा, जल क्रीड़ा, बाह्य क्रीड़ा का उल्लेख 'समराइच्चकहा' में मिलता है।" राजपरिवार की स्त्रियों द्वारा अन्तःपुर के भवनों तथा उद्यानों में कन्दुक क्रीड़ा (गेंद द्वारा) का उल्लेख मिलता है। राजशेखर ने **'विद्धशालभंजिका'** में भी इस क्रीड़ा का उल्लेख किया है।" विद्धशालभंजिका में ही शालभंजिका क्रीड़ा का भी वर्णन मिलता है।" यह स्त्रियों की क्रीड़ा थी जिसमें पुष्पित शाल वृक्ष के नीचे एक हाथ से उसकी टहनी झुकाकर तथा दूसरे से पुष्पों को तोड़कर परस्पर पुष्पवृष्टि का खेल खेला जाता था। उद्योतनसूरि ने 'कुवलयमाला' में शालभंजिका की मूर्तियों का उल्लेख किया है।" हरिभद्रसूरि ने 'समराइच्चकहा' में," माघ ने **'शिशुपाल वध'** में" तथा राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में जल विहार का भी वर्णन किया है।" इस क्रीड़ा का आयोजन ग्रीष्म

ऋतु में संध्या के समय किया जाता था। इसमें स्त्री एवं पुरुष अलग-अलग एवं साथ-साथ भी भाग लेते थे। मालव संवत् 480 के गंगधार लेख में आनन्ददायक जलाशय, उपवनों के समूह एवं तालाब का उल्लेख तथा वि.सं. 770 के चित्तौड़ के मानमोरी शिलालेख में राजा मान द्वारा एक ऐसे जलाशय के निर्माण का वर्णन मिलता है जो घने वृक्षों से घिरा हुआ था और वहाँ सुरम्य पक्षियों का आगमन होता था। ये दोनों ही रमणीक स्थान वन विहार एवं जल विहार के भी केंद्र रहे होंगे। इसके अतिरिक्त 'समराइच्चकहा' में सूत्र क्रीड़ा (दोनों हाथों में रस्सी पकड़कर दौड़ते हुए कूदना), नलिका क्रीड़ा (जल में स्नान करते समय कमलनाल से किया गया खिलवाड़), स्वच्छंदन क्रीड़ा आदि क्रीड़ाओं का भी उल्लेख मिलता है।

प्राचीनकाल की एक अन्य महत्वपूर्ण क्रीड़ा द्यूत क्रीड़ा थी। इसका प्रचलन राजमहल से लेकर जन-सामान्य तक था। वस्तुतः यह जुए का खेल था जिसमें नकद धन या अन्य वस्तुओं को दांव पर लगाया जाता था। 'समराइच्चकहा' में अनेक स्थानों पर इस क्रीड़ा का विवरण मिलता है। इस क्रीड़ा में प्रवीण व्यक्ति को द्यूताचार्य कहा जाता था। राजशेखर ने भी 'बालभारत' में द्यूत का उल्लेख किया है। 'कुवलयमाला' में मायादित्य एवं स्थाणु नामक दो मित्रों के वार्तालाप के सम्बन्ध में इसे धनार्जन का निन्दित साधन भी बताया गया है। राजस्थान से प्राप्त अभिलेखों में भी द्यूत क्रीड़ा के पर्याप्त उल्लेख मिलते हैं। वि.सं. 746 के झालरापाटन के शिव मंदिर से प्राप्त अभिलेख में देव के अग्रज वोप्पक का समृद्ध कोश वाले राजाओं की द्यूत सभाओं में आदर का उल्लेख मिलता है। राज्य द्वारा द्यूत पर करारोपण भी किया जाता था। जिससे राजकोष को पर्याप्त आय भी होती थी। वि.सं. 1010 की सारणेश्वर प्रशस्ति में विष्णु मंदिर की व्यवस्था के लिए जुआरियों से पेटक (एक दाव की जीत का भाग) लेने का विवरण मिलता है। वि.सं. 1053 के हस्तिकुण्डी के धवल के बीजापुर अभिलेख में भी जुआरियों पर करारोपण का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार वि.सं. 1136 के अर्थूणा अभिलेख से भी विदित होता है कि परमार नरेश चामुण्डराय ने भी जुआ पर करारोपण किया था। ये सभी उल्लेख तत्कालीन समाज में द्यूत के बड़े पैमाने पर प्रचलन के स्पष्ट प्रमाण हैं।

नगर जीवन के आमोद-प्रमोद एवं आनन्द उल्लास में गणिकाओं का भी महत्वपूर्ण स्थान होता था। गणिकाएँ विभिन्न कलाओं एवं कामशास्त्र में निपुण होती थीं। गणिका के अभाव को किसी भी प्रमुख नगर के जीवन की महती त्रुटि समझा जाता था। किन्तु पूर्व मध्यकाल में गणिका के पद पर प्रतिष्ठित किसी भी नारी के लिए गौरव की बात नहीं थी। '**मृच्छकटिकम्**' में गणिका की तुलना उस बावड़ी से की गई है जिसमें विद्वान एवं मूर्ख दोनों ही स्नान कर सकते हैं। उसे ऐसी लता बताया गया जिस पर मयूर एवं कौआ दोनों ही बैठते हैं। राजस्थान के अभिलेखों में गणिका सम्बन्धी उल्लेख प्राप्त होते हैं। वि.सं. 682 के वसन्तगढ़ अभिलेख में वृत्ता नामक गणिका (देवदासी) का उल्लेख मिलता है। वि.सं. 1099 की चन्द्रावती की लाण-कावड़ी प्रशस्ति में बदपुर नगर को विद्वान ब्राह्मणों एवं सैनिकों के साथ गणिकाओं से भी सुशोभित बताया गया है। इसी प्रकार वि.सं. 1205 के अल्हणदेव के नाडौल ताम्रपत्र में विलासिनी पद्मावती सुत तोजला की चर्चा मिलती है।

'**समराइच्चकहा**' में गूढ़ चतुर्थक गोष्ठी का भी वर्णन मिलता है। इस गोष्ठी में राजपरिवार के समवयस्कों द्वारा अस्थानिका मण्डप में बैठकर वाद-विवाद द्वारा गूढ़तर बातों का रहस्यभेदन किया जाता था। वाद विवाद के साथ-साथ इस गोष्ठी में विभिन्न प्रकार की मनोरंजक चर्चाएँ भी चला करती थीं। राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में काव्य गोष्ठियों का भी वर्णन किया है जिनमें कविगण काव्यपाठ के द्वारा राजपरिवार के स्त्री-पुरुषों का मनोरंजन करते थे।

कभी-कभी विशेष अवसरों पर ऐसी काव्य गोष्ठियों का भी आयोजन किया जाता था जिसमें सभी वर्ग के लोग सम्मिलित होते थे।

उत्सव एवं पर्व एक ओर जहाँ संस्कृति के संवाहक होते हैं वहीं दूसरी ओर वे मनोरंजन के भी महत्वपूर्ण साधन भी होते हैं। प्राचीन राजस्थान से प्राप्त अभिलेखों में अनेक उत्सवों एवं पर्वों का वर्णन प्राप्त होता है। हर्ष संवत् 30 के खण्डेला अभिलेख में भगवान शंकर की स्तुति करते हुए कहा गया है कि गणेश एवं कार्तिकेय के मनोविनोद हेतु भगवान शंकर उन्हें भगवान विष्णु के किसी उत्सव (मेले) में लेकर गये। अनेक देवताओं के यात्रा उत्सवों का भी वर्णन अभिलेखों में मिलता है। इन यात्रा उत्सवों में नृत्य, संगीत तथा विभिन्न वाद्यों के माध्यम से उत्सव का आयोजन किया जाता था। वि.सं. 1147 के नाडौल अभिलेख एवं वि.सं. 1147 के ही सांडेराव अभिलेख में महाराणा जोजलदेव द्वारा प्रसारित आज्ञा का वर्णन मिलता है जिसमें कहा गया है कि जिस दिन जिस देवता की यात्रा हो उस दिन अन्य देवताओं को मानने वाले लोग जिसमें राजकर्मचारी भी सम्मिलित थे, सुन्दर वस्त्रों एवं अलंकारों से सुसज्जित होकर यात्रा उत्सव में उपस्थित रहेंगे। इन उत्सवों के समय नृत्यकारों, संगीतकारों एवं शूलधारियों को भी आवश्यक रूप से उपस्थित होना पड़ता था। वि.सं. 1215 के लालराई (पाली) के अभिलेख में शान्तिदेव की यात्रा का उल्लेख मिलता है। अभिलेखों में स्त्रियों द्वारा दीपोत्सव आयोजित करने के भी उल्लेख मिलते हैं। इन उत्सवों में स्त्रियाँ अपने आराध्यदेव के सम्मुख उपस्थित होकर श्रद्धा एवं भक्ति के साथ दीपोत्सव का आयोजन कर दान पुण्य का कार्य करती थीं। वि.सं. 1216 के पाणाहेड़ा (बांसवाड़ा) ताम्रपत्र में स्त्रियों द्वारा दीपोत्सव के आयोजन का वर्णन मिलता है। पृथ्वीराज विजय में चाहमान चन्दनराज की रानी रुद्राणी (आत्मप्रभा) जो यौगिक क्रियाओं में निपुण थी, द्वारा पुष्कर में अपने आराध्यदेव महादेव के सम्मुख प्रतिदिन एक हजार दीपक जलाने का विवरण मिलता है। इसी प्रकार जालोर से प्राप्त एक लेख में वि.सं. 1268 को दीपोत्सव के दिन पूर्णदेवसूरि के शिष्य श्री रामचंद्राचार्य द्वारा स्वर्ण-कलश स्थापित कराने का उल्लेख प्राप्त होता है।

साहित्य में भी अनेक उत्सव-महोत्सवों का वर्णन मिलता है जिसमें सभी लोग उत्साहपूर्वक भाग लेते थे। ऋतुओं से सम्बन्धित महोत्सवों में कौमुदी महोत्सव, वसन्तोत्सव एवं मदनोत्सव प्रमुख थे जिनमें सामान्य जन से लेकर राजपरिवार एवं धनाढ्य वर्ग के लोग उत्साहपूर्वक भाग लेते थे। ऋतु सम्बन्धित इन महोत्सवों का दोनों ही जैन ग्रन्थ- 'समराइच्चकहा' एवं 'कुवलयमाला' में वर्णन प्राप्त होता है. 'समराइच्चकहा' में अनेक स्थानों पर कौमुदी महोत्सव का उल्लेख मिलता है. यह महोत्सव शरद पूर्णिमा के दिन सम्पन्न होता था। पी.वी. काणे के अनुसार, यह महोत्सव आश्विन मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के दिन मनाया जाता था. 'कामसूत्र' में इसका वर्णन (कौमुदी जागरण) देशव्यापी महोत्सव के रूप में किया गया है। इस अवसर पर स्त्री-पुरुष तथा बच्चे सुन्दर वस्त्र तथा आभूषण आदि धारण कर उद्यानों, कुंजों तथा लतागृहों में जाकर नृत्य, गान एवं द्यूत का आनन्द लेते थे। उद्योतन सूरि ने '**कुवलयमाला**' में सागर दत्त की कथा के प्रसंग में इसका वर्णन करते हुए इसे शरद पूर्णिमा का महोत्सव कहा है। '**कुवलयमाला**' के अनुसार इस महोत्सव में नगर के चौराहों पर नटों के नृत्य होते थे। 'समराइच्चकहा' में कार्तिक पूर्णिमा महोत्सव का भी वर्णन मिलता है जिसे स्त्रियों का महोत्सव बताया गया है। इस अवसर पर पुरुषों को नगर से बाहर कर दिया जाता था। स्त्रियाँ संगीत, वाद्य एवं नृत्य के द्वारा रातभर इस महोत्सव का आयोजन करती थीं।

बसन्त ऋतु के उत्सवों में वसन्तोत्सव एवं मदनोत्सव का महत्वपूर्ण स्थान था। वसन्त ऋतु के

प्रारम्भ में वसन्तोत्सव अथवा सुवसन्तक का आयोजन किया जाता था। 'कुवलयमाला' में इसका उल्लेख नववसन्तक उत्सव के रूप में मिलता है। 'समराइच्चकहा' में चैत्रमास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी को आयोजित अष्टमीचन्द्र महोत्सव का वर्णन मिलता है। इस अवसर पर स्त्रियां सुन्दर वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर संगीत, नृत्य तथा अन्य केलि क्रीड़ाओं द्वारा मनोरंजन करती थीं। इस अवसर पर मदन लीला के साथ-साथ मदन पूजा का भी आयोजन किया जाता था। इस आयोजन में यद्यपि पुरुष भी सम्मिलित होते थे किन्तु इसमें स्त्रियों की प्रधानता रहती थी। सम्भवतः यह वसन्तोत्सव से सम्बन्धित कोई उत्सव था। मदनोत्सव का आयोजन चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी को होता था। **'कुवलयमाला'** एवं **'समराइच्चकहा'** में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। इस महोत्सव के आयोजन के लिए राजा द्वारा नगरों में घोषणा की जाती थी। नगर के सभी वर्गों के स्त्री-पुरुष इस आयोजन में नृत्य, गीत एवं नाटक का आयोजन करते थे। राजमार्गों पर सुगन्धित पुष्प तथा केशर एवं कस्तूरी युक्त जल छिड़का जाता था। लोग विभिन्न अलंकारों से सुसज्जित होकर समूहों में चर्चरी के साथ नृत्य-गान करते हुए राजमार्गों से होकर उद्यानों में जाते तथा उद्यानों में विभिन्न प्रकार की क्रीड़ाएं करते हुए कामदेव की पूजा सम्पन्न करते। राजपरिवार के लोग भवनोद्यानों में झूले आदि के साथ महोत्सव को सम्पन्न करते।

दमनकोत्सव भी प्राचीनकाल में पर्याप्त लोकप्रिय था। इसका अनुष्ठान चैत्र शुक्ल चतुर्दशी को होता था। स्कन्द पुराण के अनुसार, यह उत्सव सर्वप्रथम काशी में कुशध्वज नामक राजा ने शिवजी के सम्मान में प्रारम्भ करवाया था। इसी प्रकार गरुड़ पुराण में दमनाख्य नवमी का उल्लेख मिलता है जिसका अनुष्ठान चैत्र शुक्ल नवमी को होता था तथा इस दिन देवी दुर्गा की उपासना का विधान था। इस उत्सव में दमनक नामक पौधे को कामदेव का प्रतीक मानकर उसकी पूजा का भी वर्णन मिलता है। शैव एवं वैष्णव इसके आयोजन में समान रूप से सम्मिलित होते थे। राजस्थान में भी इस पर्व के आयोजन के प्रमाण मिलते हैं। वि.सं. 1100 के परमार उदयादित्य के शिलालेख में दमनक पर्व का उल्लेख मिलता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्राचीन राजस्थान में मनोरंजन का व्यापक महत्व स्वीकृत था। जैसे जैसे लगभग 7वीं-8वीं शताब्दी में राजस्थान में नये-नये नगरों का विकास हुआ मनोरंजन के साधनों में भी अभिवृद्धि हुई। तत्कालीन प्रतिमाओं, मुद्राओं, अभिलेखों एवं साहित्यिक साक्ष्यों से मनोरंजन के साधन मनुष्य के त्रिविध विकास में सहायक थे। आखेट, अश्व नर्तन एवं मल्लयुद्ध जैसे मनोरंजन उसे शारीरिक रूप से पुष्ट करते थे वहीं नृत्य, संगीत, नाट्य, चौपड़, द्यूत आदि मनुष्य की मानसिक शक्तियों का विकास एवं परिवर्धन करते हुए उसमें जीवनदायिनी शक्ति का संचार करते थे। मनोरंजन का उद्देश्य केवल दैहिक विकास तक सीमित न होकर आधि दैविक उत्थान भी था। यज्ञ, हवन, पूजा-पाठ, दर्शन, यात्रा आदि जहां समाज में आध्यात्मिक शक्ति के अभिवर्धक थे वहीं अखिल मंगल की भावना से ओत प्रोत थे। पुराकाल से अद्यतन मनोरंजन के बहुविध साधनों के प्रचलन का एक मुख्य कारण इनका तत्समान की संस्कृति के पोषक एवं वर्धन होना भी था। वस्तुतः मनोरंजन मनुष्य की आनन्दानुभूति तक सीमित न होकर उसके आत्मिक विकास से जुड़ा हुआ था। उन्नमना मनुष्य श्रेष्ठ समाज, राष्ट्र एवं संस्कृति का आधार है। अतः मनोरंजन के साधन हमारी अक्षुण्ण संस्कृति के संवाहक भी थे।

सन्दर्भ

1. भार्गव, पी.एल., इण्डिया इन दि वैदिक एज (दि अपर इण्डियन पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, 1971), पृ. 250
2. चकलादार, एच.सी., सोशियल लाइफ इन एन्शियन्ट इण्डिया स्टडीज इन कामसूत्र (वृहत्तर भारत परिषद, कोलकाता, 1929), पृ. 17।
3. समराइच्चकहा, नवमो भवो, (सम्पा.-अनु. रमेशचन्द्र भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993), पृ. 300
4. मिश्र, आर.एल., ईशोक्रेसी आफ राजस्थान (जवाहर कला केन्द्र जयपुर, 2000), वाल्यूम 3, पृ. 191-192
5. अल्तेकर, ए.एस., गुप्तकालीन मुद्राएं बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1972), पृ. 48-50
6. वही, पृ. 72-85.
7. वही, पृ. 138-140
8. सिंह, मीनाक्षी, गुप्त युग: एक मुद्राशास्त्रीय अध्ययन (कला प्रकाशन वाराणसी, 2006), पृ. 69-71
9. शर्मा, रामेश्वर प्रसाद पाण्डेय, राजशेखर और उनका युग (बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना 1977), पृ. 174.
10. द्रष्टव्य मजूमदार, आर.सी., पुसाल्कर ए.डी., मजूमदार, ए.के., दि वैदिक एज (भारतीय विद्याभवन द्वि संस्करण, मुम्बई, 1996), पृ. 509
11. ऋग्वेद 1.28.5 (वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, संवत् 2050), अन्य द्रष्टव्य उपाध्याय, रामजी, प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका (लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1966), पृ. 622-623.
12. कामसूत्र, 1.4.5 शास्त्री, देवदत्त (हिन्दी व्याख्या, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पंचम संस्करण, संवत् 2053).
13. समराइच्चकहा, प्रथमो भवो, पृ. 23, 32, 51.
14. शर्मा, रामेश्वर प्रसाद पाण्डेय, पूर्व निर्दिष्ट, पृ. 168.
15. भण्डारकर, डी.आर., 'चाटसू इंस्क्रिप्शन ऑफ बालादित्य', एपिग्राफिया इण्डिका, वाल्यूम-12, पृ. 10-17
16. सीकर संग्रहालय की सूचा पंजिका क्रमांक 264, 293, 325, 340, 348, 404, 405 एवं 406
17. भरतपुर संग्रहालय में सुरक्षित शिलाफलक सं. 431-75 एवं 432-75 की जानकारी एवं प्रत्यक्ष अवलोकन के लिए मैं पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग, भरतपुर के अधीक्षक श्री उमराव सिंह का आभारी हूं।
18. रत्नचरण, 'किणसरिया इंस्क्रिप्शन ऑफ दधीचिक (दहिया) चच्च (वि.सं. 1056)', एपिग्राफिया इण्डिका, वाल्यूम 12, पृ. 56-61.
19. उपाध्ये, ए. एन., धूर्ताख्यान ऑफ हरिभद्रसूरि (सरस्वती पुस्तक भण्डार, अहमदाबाद, पुनः मुद्रित 2002), पृ. 4
20. यादव झिनकू, समराइच्चकहा : एक सांस्कृतिक अध्ययन (भारती प्रकाशन, वाराणसी, 1977), पृ. 172
21. जैन, प्रेमसुमन, कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन (प्राकृत जैनशास्त्र एवं अहिंसा शोध संस्थान वैशाली - बिहार, 1975), पृ. 283-291.
22. शर्मा, रामेश्वर प्रसाद पाण्डेय, पूर्व निर्दिष्ट, पृ. 169-172
23. भण्डारकर, डी.आर., 'चाटसू इंस्क्रिप्शन ऑफ कामुक संवत् 918', एपिग्राफिया इण्डिका, वाल्यूम-9, पृ. 281
24. समराइच्चकहा, पढ़मो भवो, पृ. 17.
25. नाटकाख्यायिका दर्शनम्.... अभिधानकोश-छन्दोविज्ञानम्, कामसूत्र 3.15
26. हलदर, आर.आर., 'सामोली इंस्क्रिप्शन ऑफ दि टाइम ऑफ शिलादित्य', एपिग्राफिया इण्डिका, वाल्यूम-20, पृ. 97-99.
27. वर्मा, श्यामा, आचार्य राजशेखर (मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1971), पृ. 49
28. मजूमदार, आर.सी., जोधपुर इंस्क्रिप्शन ऑफ प्रतिहार बाउक, वि.सं. 894', एपिग्राफिया इण्डिका, वाल्यूम 18, पृ. 87-99
29. समराइच्चकहा, चउत्थो भवो, पृ. 17
30. वही, पढ़मो भवो, पृ. 23
31. विद्धशालभंजिका, 2.7 (सम्पा. त्रिपाठी रामकान्त, चौखम्भा, 1965)
32. द्रष्टव्य शर्मा, रामेश्वर प्रसाद पाण्डेय, पूर्व निर्दिष्ट, पृ. 169-172.
33. जैन, प्रेमसुमन, पूर्व निर्दिष्ट, पृ. 337.
34. समराइच्चकहा, नवमो भवो, पृ. 795

35. शिशुपालवध, द्वादश सर्ग (हिन्दी टीकाकार शास्त्री हरगोविन्द, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, षष्ठ संस्करण, 1995)
36. काव्यमीमांसा, अध्याय 18, पृ 254
37. फ्लीट जे.एफ. (अनु. मिश्र, जी.एस.पी.), भारतीय अभिलेख संग्रह, खण्ड 3 (राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर 1975), पृ. 90-97
38. श्यामलदास, वीर विनोद, भाग-1, पृ. 378-388
39. समराइच्चकहा, अट्ठमो भवो, पृ. 867.
40. समराइच्चकहा, चउत्थो भवो, पृ. 235 से 237 एवं 266
41. शर्मा, रामेश्वर प्रसाद पाण्डेय, पूर्व निर्दिष्ट, पृ. 173
42. कुवलयमालाकहा 57.16-17 (सम्पा. ए.एन. उपाध्ये, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, 1959)
43. ब्यूलर, जी., 'द इंस्क्रिप्शंस फ्रॉम झालरापाटन', इण्डियन एण्टीक्वेरी, वाल्यूम-5, पृ. 180-183.
44. श्यामलदास, पूर्व निर्दिष्ट, पृ.178-388
45. रामकरण, 'बीजापुर इंस्क्रिप्शन ऑफ धवल ऑफ हस्तिकुण्डी, (वि.)सं. 1053', एपिग्राफिया इण्डिका, वाल्यूम-10, पृ. 17-24.
46. बर्नेट, डी., 'अर्थूणा इंस्क्रिप्शन ऑफ दि परमार चामुण्डराज, (वि.)सं. 1136', एपिग्राफिया इण्डिका, वाल्यूम-14, पृ. 309
47. पद्मकल्पिक, 1.123
48. भण्डारकर, डी.आर., 'बसन्तगढ़ इंस्क्रिप्शंस ऑफ वर्मलात', एपिग्राफिया इण्डिका, वाल्यूम-9, पृ.97-99
49. ओझा, जी.एच., सिरोही राज्य का इतिहास, द्वितीय संस्करण (राजस्थानी ग्रन्थागार, 1999) पृ. 28-32.
50. श्रीमाली, जी.एल., राजस्थान के अभिलेख, प्रथम भाग (महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाशन, जोधपुर, 2000), पृ. 118-121
51. चादव झिनकू, पूर्व निर्दिष्ट, पृ. 225
52. काव्यमीमांसा, अध्याय 10, पृ. 128
53. सरकार, डी.सी., 'खण्डेला इंस्क्रिप्शन ऑफ ईयर 201', एपिग्राफिया इण्डिका, वाल्यूम-34, पृ. 159-163
54. भण्डारकर, डी.आर., 'दि चाहमानाज ऑफ मारवाड़', एपिग्राफिया इण्डिका, वाल्यूम-11, पृ. 38
55. वही, पृ. 27
56. श्रीमाली, जी.एल., पूर्व निर्दिष्ट, पृ. 173
57. मिश्र, आर.एल., पूर्व निर्दिष्ट, पृ. 116-119
58. द्रष्टव्य त्रिगुणायत, सतीश, अभिलेखों के आलोक में पुष्कर, वैचारिकी भाग 23 अंक 2, (2007), पृ. 41
59. भण्डारकर डी.आर., 'जालोर स्टोन इंस्क्रिप्शन ऑफ समरसिंह देव, (वि.)सं. 1242', एपिग्राफिया इण्डिका, वाल्यूम-11, पृ. 55.
60. समराइच्चकहा, सत्तमो भवो, पृ. 590
61. काणे, पी.वी. (अनु. काश्यप अर्जुन चौबे), धर्मशास्त्र का इतिहास, चतुर्थ भाग (उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, द्वितीय संस्करण, 1984), पृ. 78, 119.
62. कामसूत्र, 4.27
63. गद्य-पौर्णिमा-महसवं पेच्छमाणम्स, कुवलयमाला, 183.32.
64. यादव झिनकू, पूर्व निर्दिष्ट, पृ. 222.
65. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, प्राचीन भारत का कला विकास (अभिनव भारती ग्रन्थमाला, कलकत्ता) पृ. 110
66. कुवलयमाला, 77.15
67. समराइच्चकहा, चउत्थो भवो, पृ. 230
68. कुवलयमाला, 77.16, 18
69. समराइच्चकहा, पंचमो भवो, पृ. 388, छट्ठो भवो, पृ. 460.
70. राय, मन्मथ, प्राचीन भारतीय मनोरंजन (भारतीय विद्या भवन, इलाहाबाद, सं. 2013), पृ.192
71. वही, पृ. 193
72. पाण्डेय, राजबली, हिन्दू धर्मकोश (उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, द्वितीय संस्करण, 1988), पृ. 313-314
73. अल्तेकर, ए.एस., 'द इंस्क्रिप्शन ऑफ दि परमार उदयादित्य', एपिग्राफिया इण्डिका, वाल्यूम-23, पृ. 132-136

* इतिहास विभाग, महारानी श्री जया राजकीय विद्यालय भरतपुर (राज.)
* संस्कृत विभाग, रामेश्वरी देवी कन्या राजकीय महाविद्यालय भरतपुर (राज.)
मो. 9779409567 / 9414357802

बंदी छोड़ दिवस के रूप में मनाई जाती है स्वर्ण मंदिर में दीपावली

सविता पुष्प

हमारे देश में दीपावली का त्योहार बड़े उत्साह और हर्षोल्लास से मनाया जाता है और हम अपने घरों में, धार्मिक स्थानों में, व्यवसायिक प्रतिष्ठानों में तथा पूरे गांव, शहर को ही दीयों की रोशनी से तथा बिजली की तरह-तरह की लाइटों से सजाते हैं और खुशियां मनाने के जो भी इंतजाम हम कर सकते हैं वो करते हैं।

दीपावली यानि प्रकाश पर्व को मनाने के पीछे जो आम कारण हम जानते हैं कि इस दिन भगवान श्री रामचंद्र जी 14 वर्ष के वनवास और रावण विजय कर वापस लौटे थे। इसी खुशी में अयोध्या वासियों ने अपने घरों और नगर में दीपमाला की थी और खुशियां मनाई थी। इसके अलावा भी कई और धारणाएं, परम्परायें या फिर स्थानीय संस्कृति या सन्दर्भों से जुड़ी घटनाएं मौजूद हैं। इनमें से हिंदू धर्म के ग्रंथों में कुछ का उल्लेख तो मिलता है, लेकिन सभी का नहीं है। आइये, ऐसे ही कुछ कारणों पर हम एक नजर डालते हैं--

भगवान विष्णु ने राजा महाबली को पाताल लोक का स्वामी बना दिया था और इससे देवराज इंद्र आश्वस्त हो गए थे कि अब उनके स्वर्ग में राज करने पर कोई खतरा नहीं है। इस खुशी में दीपावली मनाई गई थी

इस दिन श्रीकृष्ण ने नरकासुर राक्षस का वध किया था और इस खुशी में भी दीपावली की गई थी।

गौतम बुद्ध के अनुयायियों ने 2500 वर्ष पूर्व गौतम के बुद्ध बनने पर उनके स्वागत में दीपमाला की थी।

इस तरह के और भी कई कारण हो सकते हैं, लेकिन अमृतसर में और खासतौर से स्वर्ण मंदिर में जो दीपावली मनाई जाती है, उस दीपावली पर वहां की दीपमाला और आतिशबाजी को देखने, देश ही नहीं पूरी दुनिया से श्रद्धालु अमृतसर स्वर्ण मंदिर के दर्शन को पहुंचते हैं। उस दिन पंजाब के गांव-गांव से लोग मिट्टी के दीए और तेल की शीशियां लेकर आते हैं और अमृत सरोवर के चारों ओर दीए जलाते हैं और अब कुछ लोग मोमबत्तियां भी लगाने लगे हैं। इस मौके पर स्वर्ण मंदिर और पूरे परिसर को ही अलौकिक तरीके से दीपों और लाइटों से सजाया जाता है।

स्वर्ण मन्दिर में मनाई जाने वाली दीपावली के साथ जो घटना जुड़ी हुई है, उसकी चर्चा

करने के लिए हमें इतिहास के झरोखे से उस दौर में झांकना पड़ेगा, जब दिल्ली के तख्त पर मुगलिया सल्तनत का शासन था। मुगल शासन काल बाबर से लेकर औरंगजेब और फिर बहादुर शाह (द्वितीय) तक का रहा है और यह कुल समय 20 अप्रैल 1526 से लेकर 21 सितंबर 1857 तक है जो लगभग 300 वर्षों का है। सिख गुरुओं का समय 1469 गुरुनानक देवजी के जन्म से लेकर 1699 गुरुगोविंद सिंह और फिर बन्दा बहादुर तथा और जनरलों का समय भी जोड़ लिया जाए तो ये भी लगभग उसी के आस पास उतरता है।

सिखों के पहले गुरुनानक से लेकर पांचवें गुरु अर्जुन देव तक की पूरी गुरु-परंपरा पूर्ण रूप से भक्ति भाव और आध्यात्मिक ही रही है, लेकिन छठवें गुरु-हरगोबिंद से इस परंपरा में थोड़ी तब्दीली आ गई थी। सिख धर्म के चौथे गुरुरामदास जी ने ही गुरु का चक यानि अमृतसर शहर को बसाया था और अमृत सरोवर को भी बनवाया था और फिर पांचवें गुरु अर्जुन देव ने सरोवर के बीच दरबार साहिब एक पवित्र स्थान बनवाया था जिसमें चारों तरफ चार दरवाजे रखे गये जिसमें हर धर्म, जाति के लोग आ सकें और ईश्वरीय आराधना कर सकें। दरबार साहिब जो कालांतर में महाराजा रणजीत सिंह द्वारा उस पर सोने की मोटी परतें चढ़ाए जाने के कारण स्वर्ण मंदिर के नाम से विख्यात हुआ। उसी स्वर्ण मंदिर में गुरु अर्जुन देव ने गुरुग्रंथ साहिब को स्थापित किया, जिसमें पहले से लेकर पांचवें गुरु की रचनाएं और भक्त कवियों की वाणी का भी संग्रह है। उसका यहां पहली बार प्रकाश किया गया और बुजुर्ग भाई बुड्ढा जी को इसका पहला ग्रंथी यानि पाठ करने वाला बनाया। गुरुअर्जुन देव जी ने तो इसमें रचनाएं संकलित करवाईं और इसे आदि गुरु ग्रंथ साहिब भी कहा जाता है। इसी ग्रंथ में फिर दसवें गुरुगोविंद सिंह ने अपने पिता श्री गुरुतेग बहादुर की रचनाओं को शामिल कर इसे वर्तमान स्वरूप प्रदान भी किया और फिर उसे ही गुरुगद्दी पर आसीन कर दिया तथा अपने सिखों को ये आदेश दिया कि **सभ सिक्खन को हुकम है, गुरू मान्यो ग्रंथ।** और यहीं से किसी जीवित व्यक्ति को गुरु मानने की जगह केवल और केवल गुरुग्रंथ साहिब को ही अपना गुरु मानने की परम्परा की शुरुआत हुई।

गुरुअर्जुन देव जी द्वारा दरबार साहिब तथा गुरुग्रंथ साहिब की स्थापना के बाद से उनके श्रद्धालुओं की संख्या में काफी इजाफा होने लगा था और उनकी कीर्ति हर तरफ फैल रही थी। ये बात कई लोगों को बर्दाश्त नहीं हो रही थी और उन लोगों ने तत्कालीन मुगल बादशाह जहांगीर के दरबारी चंदू के माध्यम से शहंशाह के कान भरने शुरू कर दिए। जिसके परिणाम स्वरूप जहांगीर ने गुरु अर्जुन देव को बुलवा भेजा और पहले तो उन्हें धर्म परिवर्तन के लिए कई किस्म के लालच दिए यहां तक शाही पीर का ओहदा तक भी, लेकिन राजी न होने पर उन पर तरह-तरह के जुल्म किये गये और फिर गर्म तवे पर बैठाकर शहीद कर दिया गया। उनकी शहादत का उनके शिष्यों पर गंभीर असर पड़ा खासतौर से उनके सुपुत्र और अगले गुरु-हरगोबिंद जी पर। जब गुरु अर्जुन देव शहीद हुए, उस समय हरगोबिंद जी की उम्र महज 11 साल की थी।

गुरु हरगोबिंद जी को जब गुरु गद्दी पर बिठाने के लिए पारंपरिक रूप से सेली टोपी मंगवाई गई जो उस दौर में आम तौर पर कोई भी धार्मिक अगुआ धारण करता था। गुरु जी ने वो टोपी ये कहते हुए वापस करवा दी कि अब ये सब चीजें सिर्फ तोशेखाने की शोभा ही हो सकती हैं और उन्होंने दस्तार (एक किस्म की पगड़ी) और एक साथ दो तलवारें मंगवा कर धारण कीं। जिसमें एक तलवार को उन्होंने मीरी की तथा दूसरी को पीरी की कहा। उन्होंने बताया कि मीरी की यानि राजकाज चलाने की तथा पीरी की यानि अध्यात्म की। मीरी की तलवार से पीरी की तलवार दो इंच लम्बी रखी गई थी, यानि राजकाज का शासन धर्म के अधीन हो। इसका मकसद था कि शासक को ताकतवर होने के बावजूद ईश्वर को नहीं भूलना है और न्याय संगत शासन ही करना है। उसके बाद उन्होंने गुरुघर के शिष्यों/ श्रद्धालुओं को ये आदेश दिया कि अब से जो भी दर्शन करने आवे, वो अपने साथ और कोई भेंट लाने की बजाए अस्त्र-शस्त्र, अच्छी नस्ल के घोड़े तथा अपने घर के हृष्टपुष्ट पुत्रों को देश कौम के लिए दान करें।

गुरु हरगोबिंद अपने पिता की शहादत के बाद स्पष्ट रूप से यह समझ चुके थे कि सिर्फ भक्ति भावना और धर्म कर्म की बातों से आज आततायियों को रोक पाना मुश्किल है जिसके लिए जरूरत पड़े तो अस्त्र उठाना जरूरी होता है। गुरु हरगोबिंद ने उसके बाद ही सुरक्षा के लिए लोहगढ़ के किले का निर्माण करवाया तथा स्वर्ण मंदिर के सामने उसी परिसर में एक ऊंचे तख्त का निर्माण करवाया और उसे अकाल तख्त का नाम दिया गया। अकाल तख्त पर बैठकर गुरुजी असहाय, गरीबों और मजलूमों की शिकायतें सुनने और उनका निराकरण करने लगे थे। उनके आह्वान पर दूर-दूर से दर्शनों को आने वाले श्रद्धालु अब तरह तरह के अस्त्र-शस्त्र लाकर भेंट करने लगे। कई लोगों ने अच्छी नस्ल के घोड़े भी लाकर दिए और एक अच्छा खासा अस्तबल बन गया था। खास बात ये हुई थी कि कई श्रद्धालुओं ने अपने स्वस्थ युवा बच्चों को भी दान कर दिया और कुछ समय में ही उनके पास लगभग 1500 बलिष्ठ युवकों की एक फौज इकट्ठी हो गई। उनके दरबार के सबसे प्रिय और बुजुर्ग जो गहरे आध्यात्मिक होने के साथ ही शस्त्रविद्या में भी पारंगत थे वे थे बाबा बुड्ढा जी उन्होंने ही गुरु हरगोबिंद को तथा और युवकों को बाकायदा शस्त्रविद्या की ट्रेनिंग देनी शुरू कर दी।

अब धीरे-धीरे ये सारी सूचनाएं मुगल दरबार तक पहुंचने लगी थी और उनके दरबारी चंदू ने जहांगीर को सचेत किया कि ये गुरु हरगोबिंद अपनी सेना और ताकत बढ़ाता जा रहा है और इसके मिजाज भी एक राजा की तरह हैं और अब तो वो तख्त बनाकर फैसले तक देने लगा है। ये आने वाले दिनों में मुगल सल्तनत के लिए खतरे का कारण बन सकता है। जहांगीर ने जब इस तरह की बातें सुनी, तो उसे भी डरा बढ़ता नज़र आने लगा। उन्होंने एक खत लिखवा के गुरु हरगोबिंद को लिखा कि मैं इस बात के लिए बहुत शर्मिंदा हूं कि मेरे द्वारा आपके पिता को मृत्युदंड दिया गया था, लेकिन मैं उसका प्रायश्चित करना चाहता हूं। मेरी तबीयत ठीक नहीं रहती है और मुझे किसी फ़कीर ने कहा है कि जब तक तुम उनके पुत्र को अपने पास

बुला कर माफी न मांग लो और अपने महल में रखकर उनकी सेवा नहीं करोगे तब तक तुम्हारी तबीयत में सुधार नहीं होगा। इसलिए आपसे मेरी खास इल्तजा है कि आप हमारे महल में पधारें और मुझे खिदमत करने का मौका दें। गुरु जी को जब खत मिला तो उन्होंने अपने बुजुर्ग बाबा बुड्ढा जी से सलाह मशविरा किया और उन्हें यहां की जिम्मेदारी सौंपकर दिल्ली जाने का निर्णय कर लिया। वैसे आशंकाएं तो भी रही हीं लेकिन बादशाह का आदेश था।

गुरुजी दिल्ली पहुंच गये और बादशाह जहांगीर ने उनका खास तरीके से स्वागत किया और अपने महल में खास मेहमानों की तरह ही रखा भी और उनकी भरपूर खातिरदारी भी की। एक दिन बादशाह शिकार के लिए गये तो साथ में गुरु हरगोबिंद को भी लेते गये। जंगल में अचानक एक शेर ने पूरे तेजी से बादशाह पर आक्रमण कर दिया। बादशाह के साथ गये हुए सिपाही अभी कुछ समझते तब तक शेर छलांग लगा चुका था, लेकिन बिजली की फुर्ती से गुरु हरगोबिंद ने अपनी तलवार निकाली और छलांग लगा चुके शेर पर अपने बलिष्ठ हाथों से वार किया और सभी ने आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता से देखा कि शेर दो टुकड़ों में कट चुका था। वापस आकर जहांगीर गुरुजी का बड़ा शुक्रगुजार हुआ कि उनकी वजह से

आज उनकी जान बच गई थी। ये खबर धीरे-धीरे दरबारियों तक पहुंच गई।

उन्हीं में से बादशाह के कुछ खास सलाहकारों ने सचेत किया कि ऐसा बलिष्ठ और फुर्तीला आदमी या तो अपने मज़हब में हो वरना तो हमारे लिए ही खतरे का कारण बन सकता है। बादशाह जहांगीर ने काफ़ी सोच विचार कर एक तरकीब निकाली और कुछ दिनों के बाद ही गुरुजी से कहा कि सल्तनत के काम से उन्हें कुछ दिन मसरूफ़ रहना पड़ेगा, इसलिए आप हमारे ग्वालियर के किले में तशरीफ़ ले जाएं जहां हमारे सारे खास इंतजाम हैं। वहीं मैं कुछ जरूरी काम निपटा कर आपसे मिलता हूँ।

गुरुजी को शाही सवारी में बिठाकर ग्वालियर के किले पहुंचा दिया जाता है। उस किले में जाने के बाद ही उन्हें पता चलता है कि किला पहले सचमुच ही मुगलों की खास आरामगाह रही थी लेकिन अब इसे वीआईपी किस्म की जेल में तब्दील कर दिया गया था और यहां 52 हिंदू राजाओं को कैद करके रखा गया था। वहां का जेलर हरिदास था, जो गुरुघर का बड़ा मुरीद था। जेलर हरिदास ने गुरुजी को बताया कि यहां जो भोजन दिया जाता है उसमें बड़े हल्के किस्म का जहर भी होता है जिससे धीरे-धीरे कैद में पड़े राजा मौत के मुंह में समा जाएं। इसी बीच जब ये बात इलाके में फैली कि गुरुजी को किले में कैद किया हुआ है तो कई श्रद्धालु किले के बाहर पहुंचने लगे और उन्हें मिलने की इजाजत तो नहीं मिली, लेकिन वे लोग किले की दीवार को ही प्रणाम करने लगे। इसी बीच कुछ शिष्यों ने जेलर हरिदास को इस बात के लिए राजी कर लिया कि वे गुरुजी को भोजन देंगे। बस फिर क्या था, उनलोगों ने पहले गुरुजी के लिए और फिर सभी कैदी राजाओं के लिए भी लंगर पकाकर भेजना शुरू कर दिया। इस तरह गुरु जी के साथ सभी कैदियों के लिए भी भोजन की अच्छी व्यवस्था हो गई थी।

उधर अमृतसर में जब काफी समय बीत गया और गुरुजी वापस नहीं आए तो शिष्यों को बड़ी चिंता हो गई और बाबा बुड्ढा जी को भी। गुरुगोविंद जी की माता गंगा जी भी बड़ी बेचैन थीं पता नहीं क्या बात है अभी तक हरगोविंद लौटा नहीं ? वैसे तो अपनी सन्तान के लिए चिंता करना एक मां के लिए स्वाभाविक ही था, पर गौरतलब बात ये भी है कि माता गंगा जी को पुत्र की प्राप्ति भी विवाह के 21 वर्ष बाद हुई थी। इसकी भी एक अलग कथा कुछ यों है कि जब कई वर्षों तक माता गंगा जी मातृत्व सुख से वंचित थीं तो एक दिन उन्होंने अपने पति गुरु अर्जुन देव जी को ये उलाहना दिया कि आपके आशीर्वाद से कईयों की झोलियां संतान की खुशियों से भर जाती हैं लेकिन मैं अब तक मातृ-सुख से वंचित हूं। गुरुजी ने कहा कि यह तो तभी हो सकता है कि जब कोई दूसरा श्रेष्ठ पुरुष इसके लिए अरदास करें। माता गंगा जी ने जब पूछा कि ऐसा पुरुष कौन हो सकता है? गुरुजी ने बाबा बुड्ढा जी का नाम सुझाया। बाबा बुड्ढा जी, जो पहले गुरु नानक देव जी से लेकर आज तक भी गुरुघर की सेवा में लगे हुए परम पुरुष ही थे। माताजी उनकी सलाह पर प्रसादे यानी रोटियां, लस्सी और गंढा यानी कच्चा प्याज लेकर बाबा बुड्ढा जी के पास गईं और उनसे भोजन करने का आग्रह किया। बाबा बुड्ढा जी ने भोजन करना शुरू किया और उस कच्चे प्याज को अपने हाथ के मुक्के से तोड़ने लगे, तभी मौका देखकर माताजी ने अपनी व्यथा का जिक्र किया। बाबा बुड्ढा जी ने कहा कि जा माता, तुम्हें शीघ्र ही एक श्रेष्ठ बलशाली पुत्र की प्राप्ति होगी और जिस तरह मैंने मुक्का मार कर प्याज को तोड़ा है, तुम्हारा पुत्र दुश्मनों के सिर तोड़ेगा। माता गंगा आशीर्वाद लेकर वापस आईं और एक साल के अंदर ही उन्हें पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई, जिसका नामकरण भी बाबा बुड्ढा जी ने ही किया था - हरगोविन्द !

इस तरह की चिंता के निराकरण के लिए 105 वर्षीय बाबा बुड्ढा जी की अगुवाई में सिखों का एक जत्था ढोलक वगैरह लेकर कीर्तन करते हुए अमृतसर से ग्वालियर के लिए पैदल ही चल पड़े। आप ग्वालियर के किले के पास पहुंचे और जेलर हरिदास से उन्हें सारी स्थिति का पता चला। बाबा बुड्ढा जी को ही सिर्फ जेल के अंदर जाकर गुरु जी से मिलने की अनुमति मिली। बाबा बुड्ढा जी गुरुजी को देखकर बड़े चिंतित हुए। गुरु जी ने आश्वस्त किया कि आप सब कोई चिंता न करें और आप सब वापस जाएं मैं शीघ्र ही आ जाऊंगा। बाबा बुड्ढा जी ने कहा कि वहां अमृतसर में आपके श्रद्धालु बड़ी चिंता में हैं और आपकी माता जी भी आपके दर्शनों के लिए लालायित हैं, तो गुरु जी ने कहा कि वहां जाकर आप दरबार साहब परिसर में सरोवर के चारों ओर हर शाम कीर्तन करते हुए परिभ्रमण करें, तो आपको अपने साथ मेरे होने का एहसास होता रहेगा। बाबा बुड्ढा जी सभी शिष्यों को लेकर वापस आ गए और हर शाम अमृत सरोवर के चारों ओर शिष्यों के साथ कीर्तन करने लगे, इसे **बाबा बुड्ढा जी की चौकी** कहा जाने लगा और खास बात ये है कि वो परंपरा आज भी उसी तरह बरकरार है। हर शाम ये चौकी कीर्तन करते हुए श्रद्धालुओं के साथ सरोवर का चक्कर लगाती है और इसमें शामिल श्रद्धालु महसूस करते हैं कि गुरु हरगोविंद जी उनके साथ चल रहे हैं।

गुरुजी को ग्वालियर के किले में कैद हुए काफी समय बीत चुका था। इसी बीच बादशाह जहांगीर की तबीयत सचमुच बिगड़ने लगी थी और कोई इलाज काम नहीं आ रहा था। उनका शाही हकीम वज़ीर खान भी इलाज कर कर के परेशान था। वह भी गुरु घर की रहमत से वाकिफ था क्योंकि उसकी अपनी एक जानलेवा बीमारी कभी गुरु अर्जुन देव जी के आशीर्वाद से ठीक हुई थी। गुरु हरगोविंद जी की कैद की बात तो वो जानता था लेकिन खुलकर कुछ बोलने की स्थिति में नहीं था। बादशाह की जानलेवा बीमारी के दौरान उनकी सबसे चहेती बेगम नूरजहां ने शासन का प्रबंध अपने हाथ में ले लिया था और बादशाह की तीमारदारी भी स्वयं करने लगी थीं। नूरजहां ने जब ये देखा कि अब दवा-दारू से कुछ नहीं हो रहा तो उसने पीरों-फकीरों की शरण में जाना ही उचित समझा। गौरतलब है कि नूरजहां का बचपन और जवानी के कुछ दिन भी लाहौर में बीते थे और तभी से पीरों-फकीरों के प्रति उसकी श्रद्धा थी। उन दिनों लाहौर के सूफ़ी संत मियां मीर की बड़ी मान्यता थी और उनका मुगल दरबार में भी अच्छा खासा अदब-सत्कार था। वो गुरुघर की रूहानियत का भी बड़ा कायल था। नूरजहां ने अपने खास दूत के माध्यम से खुदा के बंदे माने जाने वाले उन सूफ़ी संत मियां मीर को अदब से महल में आने की गुज़ारिश की। मियां मीर जब तशरीफ़ लाए तो उन्होंने बेगम नूरजहां और बादशाह सलामत को साफ़ साफ़ लफ़्ज़ों में कहा कि आपने खुदा के बंदे सिक्खों के गुरु हरगोविंद को अपनी कैद में रखा हुआ है। अगर आप अपनी सलामती चाहते हैं, तो बिना और देरी किए उन्हें रिहा कर दें। बेगम नूरजहां ने जब अपने मुर्शिद मियां मीर के ये अल्फ़ाज़ सुने तो बेगम और जहांगीर के पास अब और कोई चारा नहीं था। गुरु हरगोविंद की रिहाई का शाही फ़रमान जारी कर दिया गया और ग्वालियर के किले भिजवाया गया।

उस फ़रमान को पाते ही ग्वालियर किले का जेलर हरिदास बड़ा खुश हुआ और ये खबर गुरुजी को तुरंत जा सुनाई कि आपकी रिहाई का शाही फ़रमान आ गया है और आप को रिहा किया जाता है। गुरुजी ने कहा ये तो अच्छी खबर है, लेकिन इस किले में कैद किए गए सभी कैदी राजाओं को भी जब तक रिहा नहीं किया जाता, मैं भी रिहा नहीं होना चाहता। जब ये खबर जहांगीर के पास पहुंची तो उसने टालने की गरज से ये आदेश जारी कर दिया कि ठीक है, हरगोबिंद के साथ उनको पकड़ कर जितने भी कैदी एक बार में बाहर निकल सकेंगे उन्हें रिहा मान लिया जायेगा। दरअसल जहांगीर ने यही सोचा था कि उनके साथ दो-चार कैदी निकल जाएंगे या फिर पहले मैं के चक्कर में आपस में लड़ लेंगे और कोई भी निकल नहीं पाएगा। लेकिन गुरु हरगोबिंद को जब ये शर्त बताई गई तो उन्होंने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया और जेलर की सहायता से 52 कलियों यानी छोरों वाला बड़ा सा चोला सिलवाया। रिहाई के समय उन्होंने वो चोला पहन लिया और सभी राजाओं को कहा कि जब मैं बाहर निकलूं, तुम लोग चोले की एक एक कली पकड़ लेना। ऐसा ही हुआ और गुरुजी सभी 52 कैदी राजाओं को लेकर बाहर आ गए। गुरुजी की इस सूझ-बूझ से सभी राजे रिहा हो गये और इसी कारण से वे

बाद में बंदी छोड़ गुरुदेव के नाम से प्रसिद्ध भी हुए।

जब इस तरह ग्वालियर के किले से रिहा होकर गुरु हरगोविंद अमृतसर पहुंचे तो उनके स्वागत में पूरे शहर को तथा दरबार साहिब को तथा सरोवर के चारों तरफ दीपमाला से सजाया गया था। कुछ इतिहासकारों का मत है कि वो समय कोई और था, लेकिन फिर बाद में दीपावली वाले दिन को ही बंदी छोड़ दिवस के रूप में मनाया जाने लगा।

अभी भी हर साल बड़े हर्षोल्लास और श्रद्धा तथा नायाब तरीके से यह दीपमाला की जाती है कि देश दुनिया से श्रद्धालु पहुंचते हैं और स्वर्ण मंदिर परिसर के अंदर जितने भी रिहायशी कमरे बने हैं तथा शहर के होटल वगैरह, स्कूलों के कमरे सभी श्रद्धालुओं और पर्यटकों के रहने से भर जाते हैं। अमृतसर की इस नायाब दीपावली को लेकर पंजाब में एक कहावत भी प्रचलित हुई-

दाल रोटी घर दी, दीवाली अमृतसर दी

यानि अपने घर की दाल रोटी और अमृतसर की दीवाली का कोई जवाब नहीं।

अमृत सरोवर में जब पानी के दर्पण में दीपमालिका की प्रतिच्छाया स्वर्ण मंदिर के साथ पड़ती है, तो दर्शक मंत्रमुग्ध होकर देखते ही रह जाता है। ऐसे में सरोवर के अंदर से जब बड़ी-बड़ी सुंदर मछलियां किलकारी भरती हुई ऊपर की ओर मुंह खोलती हैं, तो दर्शकों के मुंह से बेसाख्ता निकल पड़ता है कि कहीं भी ऐसा खूबसूरत नजारा और कहीं नहीं देखा......

वहां विचरण करते हुए लोगों की जुबान से फिसलते हुए कई अमूल्य शब्द में तैरते हुए कानों से टकराते हैं लाजवाब, एक्सीलेंट फैंटास्टिक, दारून, अतिसुंदर हाय ओ रब्बा आखां नूं ठंड पै गई वगैरा-वगैरा....

स्वर्ण मंदिर में दीपावली की रात को ऐसे दिलकश नजारे से रूबरू होने का मौका इंशा अल्लाह अगर अब तक नसीब ना हुआ हो तो फिर इससे महरूम नहीं रहना चाहिए और किसी साल इस नियामत की कयामत के मंजर का चश्मदीद जरूर बनना चाहिए। वैसे तो वहां ठहरने के लिए अंदर कई सराय बनी हुई हैं लेकिन ऐसा अक्सर होता है कि बेइंतहा भीड़ के चलते आपको कमरा ना मिल पाए लेकिन आसपास के स्कूलों में इसका इंतजाम किया जाता है। वैसे उस रात को वहां जाकर सोना ही कौन चाहेगा क्योंकि जी नहीं चाहता कि वहां जरा भी पलक झपक जाए और एक पल के लिए भी उस नजारे को आंखों में भर लेने से महरूम हुआ जाए। स्वर्ण मंदिर परिसर में ही हॉल में चलता रहता है शबद कीर्तन और लंगर घर में चौबीसों घंटे अनवरत लंगर तथा अंदर पार्क में मुफ्त वितरित हो रही हैं गरमा गरम जलेबियां, पकौड़े और तरह-तरह पकवान तथा गर्मागरम चाय.....

अब भला कौन नहीं चाहेगा अमृतसर के अमृत सरोवर में रूहानी डुबकी लगाने और स्वर्ण मंदिर परिसर में दीपावली की रात का दिलकश नजारा देखने। इसके साथ ही अपने अंदर फैली अज्ञानता का अंधकार और जाति तथा धर्म के नाम पर जुल्म करने जैसी बुराइयों के बंधनों से मुक्त होने की भी रात होगी, तभी तो सही अर्थों में दीपावली यानी बंदी छोड़ दिवस को पालन कर जीवन सार्थक कर लेने की भी यादगार रात होगी और मुंह से बेसाख्ता निकल पड़ेगा

डिट्ठे सभे थांव नहीं तुध जेआ

यानि जगहें तो बहुत सी देखी हैं, पर तेरे जैसी जगह नहीं देखी..

किसी भी जाति धर्म से मुक्त होकर हम अगर सिर्फ एक सैलानी के रूप में भी जाएं तो आनंद में कहीं कोई कमी नहीं। वैसे वह इंसानियत का जज्बा अपने आप उभरकर सामने आने लगता है और लगता है कि वह भक्ति जो काल से परे है यानी अकाल है वही सत्य है बाकी सब मिथ्या है इसलिए ऐसा एहसास होता है और हम उद्घोष कर उठते हैं।

जो बोले सो निहाल, सत् श्री अकाल!

सम्पर्क : नेताजी टावर,

278/ए, एन. एस. सी. बोस रोड

कोलकाता 700047.

ई.मेल: rawelpushp@gmail.com

चलितभाष : 9434198898.

महाकवि घाघ की कृषि व मौसम वैज्ञानिक रचनाएँ

बद्री नारायण तिवारी

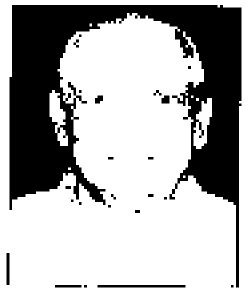

शताब्दियों पूर्व मुगल सम्राट अकबर के समय में महाकवि घाघ भड्डरी हुए हैं, जिन्होंने भक्ति की परम्परा से हट कर कृषि विज्ञान के क्षेत्र में कविताएँ की है। उन्होंने नक्षत्रों और ग्रहों की गति की गणना करके उनके प्रभावों का मूल्यांकन करते हुए भारतीय कृषक जीवन के हित-चिन्तन में वर्षा और कृषि सम्बन्धी कविताएं की है। अनुभव के सार के रूप में ये कहावतें कही गई। इनमें कृषि व मौसम विज्ञान के संदर्भ में इनके द्वारा की गई इतनी सटीक भविष्यवाणियां है कि उनको देखते हुए महाकवि घाघ को यदि कृषि व मौसम वैज्ञानिक कहा जाए तो इसमें कोई संदेह नहीं है।

महाकवि घाघ भड्डरी को कृषि सम्बन्धी सूक्ष्म बातों व मौसम के बदलते रूप का अद्भुत ज्ञान था। इनकी कविताओं व कहावतों में प्रकृति के ऐसे अद्भुत संयोग व उनसे सम्बन्धित गूढ़ बातें निहित हैं, जो यथार्थ में आज भी प्रतिफलित होती हैं। यही कारण है कि ग्रामीण इलाकों के किसान आज भी इन्हें कंठस्थ किए हुए हैं। जैसे

सर्व तपै जो रोहिनी, सर्व तपै जो मूर।
परिवा तपै जो जेठ की, उपजे सातो तूर।।

यदि रोहिणी भर तपे और मूल भी पूरा तपे और ज्येष्ठ की प्रतिपदा तपे तो सातों प्रकार के अन्न पैदा होंगे।

शुक्रवार की बादरी, रही सनीचर छाय।
तो यों भाखै भड्डरी, बिन बरसे ना जाए।।

यदि शुक्रवार के बादल शनिवार को छाए रहें तो भड्डरी कहते हैं कि वह बादल बिना पानी बरसे नहीं जाएगा

भादों की छठ चाँदनी, जो अनुराधा होय।
ऊबड़ खाबड़ बोय दे, अन्न घनेरा होय।।

यदि भादों सुदी छठ को अनुराधा नक्षत्र पड़े तो ऊबड़-खाबड़ जमीन में भी उस दिन अन्न बो देने से बहुत पैदावार होती है।

अद्रा भद्रा कृत्तिका, अद्र रेख जु मघाहि।
चंदा ऊगै दूज को सुख से नरा अघाहि।।

यदि द्वितीया का चंद्रमा आर्द्रा नक्षत्र, कृत्तिका, श्लेषा या मघा में अथवा भद्रा में उगे तो मनुष्य सुखी रहेंगे।

सोम सुक्र सुरगुरू दिवस पौष अमावस होय।
घर-घर बजे बधावनी, दुःखी न दीखे कोय।।

यदि पूस की अमावस्या को सोमवार, शुक्रवार, बृहस्पतिवार पड़े तो घर-घर बधाई बजेगी, कोई दुःखी न दिखाई पड़ेगा

सावन पहिले पाख में दसमी रोहिनी होय।
महंग नाज अरू स्वल्प जल, विरला विलसै कोय।

यदि श्रावण कृष्ण पक्ष में दशमी तिथि को रोहिणी हो तो समझ लेना चाहिए अनाज महँगा होगा और वर्षा स्वल्प होगी, विरले ही लोग सुखी रहेंगे।

आस-पास रबी बीच में खरीफ।
नोन मिर्च डाल के, खा गया हरीफ।।

खरीफ की फसल के बीच में रबी की फसल अच्छी नहीं होती।

आद्रा में जो बोवै साठी। दुःखै मारि निकाले लाठी।।

जो किसान आर्द्रा में धान बोता है, वह दुःख को लाठी मारकर भगा देता है।

पुरवा रोपे पूर किसान। आधा खखड़ी आधा धान।।

पूर्व नक्षत्र में धान रोपने पर आधा धान और आधा पैया (छूछ) पैदा होता है।

गेहूँवाह। धान बिदाहें।।

गेहूँ की पैदावार अधिक बार जोतने से और धान की पैदावार बिदाहने (धान होने के चार दिन बाद जोतवा देने से) अच्छी होती है।

रोहिनी जो बरसै नहीं, बरसे जेठा मूर।
एक बूँद स्वाती पड़ै, लागे तीनिउ नूर।।

यदि रोहिणी में वर्षा न हो, पर ज्येष्ठा और मूल नक्षत्र बरस जाएं तथा स्वाति नक्षत्र में भी कुछ पड़ जाएं, तो तीनों अन्न (जौ, गेहूँ, और चना) अच्छे होंगे।

असाढ़ मास पूनो दिवस, बादल घेरे चंद्र।
तो भड्डरी जोसी कहैं, होवे परम आनंद।।

यदि असाढ़ी पूर्णिमा को चंद्रमा बादलों से ढका रहे, तो भड्डरी ज्योतिषी कहते हैं, कि उस वर्ष आनन्द ही आनन्द रहेगा।

जो बरसे पुनर्वसु स्वामी। चरखा चलै न बोलै तौती।।

पुनर्वसु और स्वाती नक्षत्र की वर्षा से किसान सुखी रहते हैं कि उन्हें और तौत चलाकर जीवन निर्वाह करने की जरूरत नहीं पड़ती।

हस्त बरस चित्रा मँड़राए। घर बैठे किसान सुख पाए।।

हस्त नक्षत्र में पानी और चित्रा में बादल मँडराने से (क्योंकि चित्रा की धूप बड़ी विषाक्त होती है) किसान घर बैठे सुख पाते हैं।

इस तरह महाकवि घाघ ने मौसम-विशेषकर वर्षा, कृषि, अनाज, अकाल या सुकाल सम्बन्धी अनेक तरह की कहावतें व दोहे कहे हैं, जो मौसम की भविष्यवाणी करते हैं। भविष्यवाणी करने के कारण ही महाकवि घाघ को भड्डरी कहा गया, भड्डरी अर्थात भविष्यवाणी करने वाला। इनका जन्म कन्नौज में संवत 1753 में कहा गया है। वहीं से ये देश भर में घूमे और अपनी कहावतों का प्रचार-प्रसार किया, बाद में इनके वंशज इन कहावतों को प्रचारित करने के लिए देश भर में फैल गए। आज भी कश्मीर, पंजाब, राजपूताना, काठियावाड़, गुजरात, महाराष्ट्र, दक्षिण भारत, उड़ीसा, बंगाल, असम, बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा अन्य प्रांतों में इनकी कहावतें भिन्न-भिन्न भाषाओं व बोलियों में मिलती हैं

महाकवि घाघ भड्डरी की कहावतों का ही यह प्रभाव है कि भारत में वर्षा के सम्बन्ध में किसानों का ज्ञान बड़ा सटीक है। उनका प्रकृति का निरीक्षण बड़ा अद्भुत है। गिरगिट, बनमुर्गी, साँप, गौरैया, मेढ़क, चींटी, बकरी आदि जीवों की गतिविधि और हवा के रूख और आकाश के रंग को देखकर वे वर्षा का सटीक अनुमान कर पाते थे। वे पौष और माघ का वातावरण देखकर ही भादों में वृष्टि का अनुमान कर लेते थे। पौष और माघ में हवा का रूख और बादल--बिजली देखकर वे यह बता सकते थे कि सावन और भादों में कब व कितनी वर्षा होगी। वे मानते थे कि ज्येष्ठ का महीना यदि बिना बरसे बीत गया तो सावन--भादों में अच्छी वर्षा होगी।

नक्षत्रों, राशियों और दिनों के सम्बन्ध में किसानों के बीच महाकवि घाघ भड्डरी की बहुत सी ऐसी कहावतें आज भी प्रचलित हैं, जो सच ठहरती हैं। जैसे--- **मंगलवारी होय दीवाली, हँसे किसान रोवै बेपारी।** यदि मंगलवार को दीवाली पड़े, तो अन्न इतना सस्ता हो जाता है कि उसमें किसानों को बहुत लाभ होता है और व्यापारियों को घाटा लगता है।

घाघ भड्डरी संस्कृत भाषा के भी ज्ञाता थे और इनकी अनेक कहावतें 'गंधमाला' नामक संस्कृत ग्रन्थ में भी प्राप्त होती हैं, किन्तु समय की माँग के अनुसार -- इन्होंने अपने ज्ञान को लोकभाषा यानी जनभाषा हिन्दी में प्रस्तुत करने का निर्णय लिया, जो भारतीय कृषक समाज के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। किन्तु विडम्बना है कि हमारी दृष्टि मात्र विदेशी कार्यकलापों पर ही रहती है।

मानस संगम
प्रयाग नारायण मन्दिर (शिवाला)
कानपुर--208001
मो. - 9839030118

कर्तव्य बोध

एक किसान को विरासत में खूब धन संपत्ति मिली। वह दिन भर खाली बैठा हुक्का गुड़गुड़ाता रहता और गप्पें हाँकता रहता। उसके रिश्तेदार और काम करने वाले नौकर-चाकर उसके आलस्य का खूब लाभ उठाते और उसके माल पर हाथ साफ करने लगे।

एक दिन उसका एक पुराना मित्र उससे मिलने आया। वह अव्यवस्था देखकर उसे बड़ा कष्ट हुआ और उसने किसान को समझाने की बहुत कोशिश की, लेकिन उस पर कोई असर नहीं हुआ। अब उसने अपने किसान मित्र से कहा कि वह उसे एक महात्मा के पास ले जाएगा जो उसे अमीर होने के नुस्खे बताएंगे। यह सुनकर वह तुरंत तैयार हो गया और मित्र के साथ महात्मा के पास जा पहुंचा। उस महात्मा ने उससे कहा कि हर दिन सूर्योदय से पहले एक श्वेत नीलकंठ तुम्हारे खलिहान, गौशाला, घुड़साल और घर का चक्कर लगाता है और बहुत जल्दी गायब हो जाता है। तुम उस नीलकंठ के दर्शन करोगे तो तुम्हारी धन-संपत्ति तेजी से बढ़ जाएगी।

अगले दिन किसान खुशी-खुशी सूर्योदय से पहले उठा और नीलकंठ की खोज में पहले अपने खेत पर गया तो उसने देखा कि उसका एक रिश्तेदार अनाज भरकर ले जा रहा है। किसान फिर वहां से गौशाला पहुंचा तो देखा उसका नौकर दूध की भरी बाल्टी चुराकर अपने घर ले जा रहा है। फिर जो वह घुड़साल गया तो देखा वहां हर तरफ गंदगी पसरी थी, उसका नौकर वहां सो रहा था। अगले दिन भी कुछ इसी तरह हुआ।

वह किसान रोज ही नीलकंठ की खोज में जाने लगा, अब उसके रिश्तेदार और नौकर सब सजग हो चुके थे और अपना काम भी ईमानदारी और फुर्ती से करने लगे थे। वह खुद भी आलस्य से मुक्त होकर काफी स्वस्थ हो गया था। लेकिन उसे नीलकंठ के दर्शन तो नहीं हुए, तो वो महात्मा के पास गया और ये बात बताई। महात्मा ने मुस्कराते हुए कहा कि तुम्हें नीलकंठ के दर्शन तो हो चुके हैं लेकिन तुम उसे पहचान नहीं पाए। वो श्वेत नीलकंठ तुम्हारा कर्तव्य ही है। यह सुनकर किसान की आँखें खुल गईं और उसे अपना कर्तव्य बोध हुआ।

गुलिस्तां में देववाणी की गूंज

सत्यव्रत वर्मा

ईरान के विख्यात कवि शेख सादी का गुलिस्तां विश्व-साहित्य की कालजयी कृति है। इसमें कहानियों तथा फुटकर प्रसंगों के द्वारा पंचतन्त्र तथा हितोपदेश आदि की भाँति नीति की शिक्षा दी गयी है। गुलिस्तां की कहानियां और सूक्तियां इतनी व्यावहारिक और चुटीली हैं कि बारहवीं शताब्दी का यह ग्रंथरत्न आधुनिक युग की रचना का आभास देता है। इस नीति ग्रंथ को आरम्भ से ही विशेष प्रसिद्धि तथा प्रतिष्ठा मिली है। उमर खैय्याम की रुबाइयों की तरह गुलिस्तां के भी संसार की प्रायः सभी सम्पन्न भाषाओं में अनेक अनुवाद हुए हैं। अंग्रेजी में एडविन आर्नल्ड के अनुवाद ने अपूर्व ख्याति अर्जित की है। संस्कृत में इसका अनोखा प्रामाणिक तथा रोचक पद्यानुवाद वर्षों पूर्व स्वर्गीय आचार्य धर्मेन्द्र कुमार द्वारा किया गया था। लोकप्रियता की दृष्टि से गुलिस्तां का सार्वभौमिक तथा सर्वकालिक महत्त्व है। संसार में कोई विरला ही ऐसा साहित्य प्रेमी होगा, जो शेखसादी और उनके गुलिस्तां से परिचित न हो। शेखसादी बहुत जिज्ञासु व्यक्ति थे। अपनी इस जिज्ञासु वृत्ति तथा ज्ञान-पिपासा से प्रेरित उन्होंने एशिया तथा अरब देशों की दूर-दूर तक यात्राएं कीं। वे भारत में चार बार आए। भारत में उन्होंने देश के प्राचीन संस्कृत-साहित्य का मूल में अथवा अनुवाद के रूप में अध्ययन अवश्य किया होगा। गुलिस्तां से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि शेख सादी संस्कृत के विशाल वाङ्मय, विशेषतः नीति-साहित्य, से भली भाँति परिचित थे। गुलिस्तां में आदि से अन्त तक देववाणी के स्वर मुखरित हैं। गुलिस्तां और संस्कृत ग्रंथों में भावों, शब्दों तथा अभिव्यक्ति की इतनी समानताएं हैं कि ये आकस्मिक नहीं हो सकतीं। यह भाव- सम्पदा निश्चित रूप से संस्कृत के विविध ग्रंथों के परिशीलन से प्रसूत तथा प्रेरित है। तुलनात्मक अनुशीलन से यह तथ्य निर्भ्रान्त रूप से पुष्ट होता है।

प्रथम अध्याय 'राजनीति' की चतुर्थ कथा में अरबी दस्युओं के उत्पातों को नष्ट करने के उपायों पर विचार-विमर्श करते हुए बादशाह के मन्त्रियों में मतैक्य था कि उनका तुरन्त दमन होना चाहिए अन्यथा कुछ समय बाद उनका उन्मूलन करना मुश्किल होगा। "ताजा लगा हुआ पेड़ एक आदमी की ताकत से उखड़ जाता है पर वही जब बढ़ता-बढ़ता जड़ पकड़ लेता है तब चर्खी लगाने से भी उसकी जड़ नहीं उखड़ती।" मन्त्रियों का यह विवेक पूर्ण मन्तव्य कालिदास के मालविकाग्निमित्र नाटक के निम्नांकित पद्य का मुक्त रूपान्तर है, जिसमें नये नये शत्रु राजा तथा शिथिल पेड़ की सटीक तुलना की गयी है।

"**अचिराधिष्ठितराज्यः शत्रुः प्रकृतिष्वरूढमूलत्वात्।**

नवसंरोपणशिथिलस्तरुरिव सुकरः समुद्धर्तुम्।।"1.4

उन दस्युओं को बन्दी बनाकर प्राणदण्ड दिया गया। वजीर ने उनके एक छोटे बालक को मुक्त करने की बादशाह से प्रार्थना की। नीति-पटु राजा का उत्तर था -"दूषित जड़ से कभी अच्छा छायादार वृक्ष उत्पन्न नहीं होता। नालायक को शिक्षा देना गुम्बद पर अखरोट फेंकने के बराबर होता है। इसमें इसको एकदम निर्मूल करना ही उचित है (पृ. 12)। राजा की इस नीति में 'पयःपानं भुजंगानां केवलं विषवर्धनम्' की प्रतिगूंज स्पष्ट सुनाई दे रही है। 'क्रिया हि द्रव्यं विनयति नाद्रव्यम्' और 'नाद्रव्ये निहिता काचित्क्रिया फलवती भवेत्' सूक्तियों में कुपात्र (नालायक) को शिक्षा देने की निरर्थकता को दृढ़ता से रेखांकित किया गया है। उपर्युक्त कथन इन्हीं पर आधारित है।

संगति के प्रभाव का संकेत करता हुआ वजीर आगे कहता है "हजरत नूह के लड़के ने दुष्टों की संगति की, इसलिये उसके घराने से पैगम्बरी जाती रही। कहफ के साथियों के कुत्ते ने भले आदमियों की सोहबत की, इससे वह आदमी बन गया" (पृ. 13)। मन्त्री का यह सुविचारित कथन सुप्रसिद्ध सुभाषित 'सत्संगतिः किम् करोति पुंसाम्' (भर्तृहरि) और भारवि की मार्मिक उक्ति 'महापकृष्टैर्न महतां संगतान्' (दुष्टों की संगत महापुरुषों को भी बरबाद कर देती है) की अवसरानुकूल व्याख्या है। पांचवीं कथा के कतिपय वचन भी संस्कृत-साहित्य के ऋणी हैं। प्यादे के लड़के की बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करते हुए कहा गया है "धन से बड़प्पन नहीं मिलता, किन्तु योग्यता से मिलता है" (पृ.14)। इन शब्दों में शेखसादी ने मानो भर्तृहरि की सुविख्यात पंक्ति 'विद्या राजसु पूजिता न तु धनम्' तथा भारवि के पद्यांश 'गुरुतां नयन्ति हि गुणा न संहतिः' का भावानुवाद कर दिया है।

वह बालक कुछ समय बाद बादशाह का कृपा-पात्र बन गया। उसका श्रेय भी उसकी बुद्धिमत्ता को ही दिया गया है "मनुष्य अक्ल से बड़ा समझा जाता है, न कि वृद्धावस्था से" (पृ.14)। यह भाव स्पष्टतः मनुस्मृति से लिया गया है। शेखसादी की सूक्ति मनु के निम्नांकित पद्य की छाया मात्र है, जिसमें ज्ञान को ही वार्धक्य का पर्याय माना जाता है।

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः।

यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः।।

ईर्ष्यालु लोगों को धिक्कारते हुए कथा में आगे कहा गया है---"अगर दिन में चमगादड़ को न सूझे तो उसमें सूरज का क्या दोष" (पृ.15)। यह कथन भर्तृहरि के नीतिशतक की 'नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्' उक्ति का सीधा अनुवाद है। इसमें सिर्फ उल्लू का स्थान चमगादड़ ने ले लिया है।

बादशाह और गुलाम की कथा में तत्त्वज्ञानी ने राजा को बताया कि उसने गुलाम का रोने-चिल्लाने से कैसे बन्द किया। पानी में डूबने के दुःख और जहाज में बैठने का सुख जानकर ही गुलाम को पता चला कि "जिसने दुःख भोगा है, वही सुख की कदर जानता है" (पृ.16)। यह चारुदत्त (मृच्छकटिक) के प्रसिद्ध पद्यांश 'सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते' तथा विक्रमोर्वशीय नाटक की सूक्ति-- **दुःखाद् यदुपनतं सुखं तद्रसवत्तरम्**'-- जो सुख दुःख भोगने के बाद मिलता है, वह बड़ा रसीला होता है-- का रूपान्तर मात्र है।

चौदहवीं कहानी में उस शहजादे का वर्णन है, जिसके सैनिकों ने राज्य पर आक्रमण के समय लड़ने से साफ इनकार कर दिया था क्योंकि उन्हें वेतन नहीं दिया जाता था। इस सन्दर्भ में एक सिपाही का कथन कि "वीर योद्धाओं को धन देकर सन्तुष्ट रखना चाहिये ताकि काम पड़ने पर वे अपना सिर भी

दे सके (पृ.22), व्यावहारिकता से परिपूर्ण है। इस पर किरातार्जुनीय की इन पंक्तियों का स्पष्ट प्रभाव है-

--**मानधना धनार्चिता धनुर्भृतः संयति लब्धकीर्तयः।**..... प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभिः समीहितुम् (1.19) (धन पाकर शूरवीर योद्धा अपने स्वामी के लिये प्राणों की बाजी लगाने में भी संकोच नहीं करते)। इस तथ्य को पंचतन्त्र में और स्पष्टत से व्यक्त किया गया है-- स्वभृत्ये--म्दसाती दद्यात्का हि दत्तुर्न युध्यते (राजा को सैनिकों को नियमित वेतन देना चाहिये, तभी वे उसके लिये लड़ेंगे, अन्यथा नहीं)।

पन्द्रहवीं कथा में राजा की चञ्चलता का शिकार के दृष्टान्त के द्वारा रोचक वर्णन किया गया है। मन्त्री के इस कथन में कि "राजाओं के चंचल स्वभाव से सावधान रहो क्योंकि वे लोग कभी प्रणाम करने से भी अप्रसन्न हो जाते हैं और कभी गालियां देने से भी सम्मान करते हैं।

-- -- यद्यपि अग्निपूजक सौ वर्ष तक आग को जलाता रहे, तो भी वह एक पल के लिये भी उसमें गिर पड़े तो भस्म हो जाएगा (पृ.23), शेख सादी ने अपने ढंग से नीतिशतक के सुभाषित---

न कश्चिच्चण्ड कोपानामात्मीयो नाम भूभुजाम्।

होतारमपि जुह्वन्तं स्पृष्टो दहति पावकः।।2

की व्याख्या की है। दोनों में अन्तर्निहित भाव एक ही है।

अगली कथा में मित्रता पर विचार-विमर्श करते समय एक मित्र का यह निष्कर्ष सही है कि "सुख-मंगल में तो शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। जो लोग ऐश्वर्य के दिनों में अपना प्रेम और मातृभाव दिखाते हैं, उनको अपना मित्र मत समझो। मैं तो उसे अपना मित्र समझता हूं, जो आफत और संकट के समय मेरा हाथ पकड़ता है। (पृ.15) मन्त्री के इस मन्तव्य को एक ओर तो '**तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं यत्**' की व्याख्या कहा जा सकता है, तो दूसरी ओर इसमें हितोपदेश के सुविख्यात पद्य---

मित्रं प्रीतिरसायनं नयनयोरानन्दनं चेतसः

पात्रं यत्सुखदुःखयोः सह भवेन्मित्रेण तद् दुर्लभम्।

ये चान्ये सुहृदः समृद्धिसमये द्रव्याभिलाषाकुला

स्ते सर्वत्र मिलन्ति तत्त्वनिकषग्रावा तु तेषां विपत्।।

के समग्र भाव को ऐसे आत्मसात् कर लिया गया है कि यह मूल की प्रतिच्छाया बन गया है।

उसी कहानी में विपत्ति में फंसे मित्र को नौकरी मिलने और पदोन्नति होने पर उसको यह नसीहत-- "धैर्य बहुत कड़वा होता है, किन्तु उसका फल मधुर होता है" (पृ.26)-भारवि की इस उक्ति से प्रभावित तथा प्रेरित प्रतीत होती है '**महतां हि धैर्यमविभाव्य वैभवम्**' (कि रात, 12.3) (महापुरुषों को धैर्य से अनन्त वैभव की प्राप्ति होती है।)

राजा के सेवक आदि उससे मिलने के लिये आने वालों के साथ कैसा दुर्व्यवहार करते हैं, इसका संकेत सतरहवीं कहानी में किया गया है। "जो कोई किसी मीर, वजीर या बादशाह के पास बिना वसीले के जाता है तो दरबान लोग उसे गरीब समझ कर उसका गला पकड़ते हैं, और कुत्ते दामन पकड़ कर खींचते हैं" (पृ.23)। **निद्राति स्नाति भुंक्ते चलति कचभरं शोषयत्यन्तराले, दीव्यत्यक्षैः न चायं गदितुमवसरो भूयमायाहि याहि।** आदि प्रसिद्ध पद्य में इस अपमान का क्रमबद्ध तथा विस्तृत वर्णन है। शेख सादी का कथन इसी पद्य के भाव से प्रभावित है। इसमें यद्यपि सेवकों का व्यवहार अधिक क्रूर और उद्दण्ड है परन्तु दोनों का तात्पर्य एक है।

सताइसवीं कहानी उस मूढ़ पहलवान शिष्य की गर्वान्धता की कहानी है, जिसने कुश्ती-कला में दक्षता प्राप्त करके अपने उस्ताद को ही चुनौती दी थी। उस्ताद ने एक मामूली-से दाव से उसे चितकर क्षण भर में शागिर्द का घमण्ड चूर-चूर कर दिया था। शिष्य के शिकायत करने पर कि यह दाव आपने मुझे

क्यों नहीं सिखाया, उस्ताद ने कहा--"अपने मित्र के हाथों में इतने मत हो जाओ कि अगर वह कभी शत्रु हो जाये तो तुम्हारा अनिष्ट कर डाले" (पृ.36)। यह सिद्धान्त विदुरनीति के इस पद्य की प्रतिच्छाया है-

न विश्वसेदविश्वस्ते नातिविश्वसेत्।

विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति।।6

इसीलिए वेद में शत्रु के समान मित्र से भी निडर रहने की कामना की गयी है-- **अभयं मित्राद् अभयममित्राद्।**

नौकरी को शेख सादी ने हिकारत की निगाह से देखा है। उसके शब्दों में "मेहनत से कमा कर रोटी लाना और आराम से बैठना अच्छा है, परंतु सोने का कमरबन्द पहन कर तावेदारी में खड़ा रहना अच्छा नहीं है"(पृ.43)। भर्तृहरि ने नौकरी को न केवल परम दुःखदायी माना है बल्कि यहाँ तक कह दिया है कि किसी की नौकरी न करने वाला व्यक्ति वस्तुतः बादशाह है। '**सेवा धर्मः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः**'(नीति.58), **मन्ये ते परमेश्वराः शिरसि यैर्बद्धो न सेवाञ्जलिः**'(वैराग्य.93)। शेख सादी की उक्त मान्यता भर्तृहरि की इन पंक्तियों से प्रेरित है।

खजोव नामक महामूर्ख गुलाम को मिस्र का राज्य देने की चर्चा करते हुए शेखसादी का यह कथन सर्वथा सत्य है-- "संसार में प्रायः देखा जाता है कि मूर्खों का मान और विद्वानों का अपमान होता है"(पृ.44)। यह उक्ति पंचतन्त्र के सुभाषित का संशोधित रूप है।

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमः।

त्रीणि तत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम्।।

दूसरे अध्याय में दरीन कण्ठ वाले अरबी छोकरे के प्रसंग में कहा गया है कि "मैदानों में आंधियां चल कर सनोवर के वृक्षों का सिर नीचा कर देती हैं परन्तु पत्थर पर उनका कुछ प्रभाव नहीं होता"(पृ.62)। यह रघुवंश की सूक्ति-- "**न पादपोन्मूलनशक्ति रंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य**"-- पेड़ों को जड़ से उखाड़ देने वाला तूफान पर्वत का बाल भी बांका नहीं कर सकता-- का अनुवाद मात्र है।

झगड़ालू और बदजुबान औरत घर की सुख-शान्ति का सत्यानाश कर देती है, इसे तीसवीं कहानी में यों प्रकट किया गया है--"अच्छे आदमी के घर में बुरी बीवी का होना उसके लिये इसी लोक में नरक के समान है"(पृ.65)। यह कड़वा सच कालिदास की ज्ञानपूर्ण सूक्ति-- '**वामाः कुलस्याधयः**'-- का विस्तार ही है।

शेख सादी ने तीसरे अध्याय के प्रथम प्रसंग में संतोष के महत्व का निरूपण किया है। उसके ये शब्द "**संतोष मुझे धनी बना दो, क्योंकि तेरे बिना कोई भी धनी नहीं है**"(पृ.68)। '**सर्वाः सम्पत्तयस्तस्य सन्तुष्टं यस्य मानसम्**' (मित्रलाभ,144) तथा '**सन्तोष एवं पुरुषस्य परमं निधानम्**' (संतोष मनुष्य का सबसे बड़ा खजाना है) की प्रतिगूंज है।

"मैं सूखी रोटी और गुदड़ी से ही सन्तुष्ट हूं क्योंकि औरों की कृतज्ञता का भार उठाने की अपेक्षा अपनी आवश्यकताओं का भार अपने सिर पर उठा लेना अधिक अच्छा है"(पृ.79), यह वाक्य जिसे दरिद्र फकीर अपने मन को धीरज देने के लिये दोहराया करता था, वस्तुतः भर्तृहरि के सुभाषित '**वयमिह परितुष्टाः वल्कलैस्त्वं दुकूलैः**.... **स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला**:' का मुक्त रूपान्तर है।

सिकन्दरिया के अकाल में फकीरों के एक दल ने भूख से तंग आकर एक धनवान किन्तु नीच हिजड़े का अतिथि बनने का विचार किया। किसी बुद्धिमान् ने उन्हें ये शब्द कहकर उनका मन बदल दिया-- "शेर भूख के मारे मांद में मर जाए लेकिन वह कुत्ते का झूठा कभी नहीं खायेगा"(पृ.85)। यह नरहरि भर्तृहरि के प्रसिद्ध पद्य '**क्षुत्क्षामोऽपि जराकृशोऽपि शिथिल प्राणोऽपि**....**किं जीर्णं तृणमत्ति मान महतामग्रेसरः केसरी** (स्वाभिमानियों में अग्रणी जंगल

का राजा शेर कभी सूखी घास नहीं खाता, भले ही वह भूख से सूख कर कांटा हो गया हो अथवा मृत्यु के मुँह में पहुँच गया हो) का स्वतंत्र भाषान्तर मात्र है।

दुर्भाग्य ग्रस्त युवा पहलवान की शिक्षा प्रद कहानी, आदि से अन्त तक, संस्कृत के नीति-साहित्य की ऋणी है। उसे हौंसला बांधते हुए उसके पिता का यह कथन "भाग्य के आश्रय बल के आश्रय से अच्छा है"(पृ.93), भर्तृहरि की सूक्ति **'दैवमेव हि शरणं धिग्वृथा पौरुषम्'** और महात्मा विदुर की उक्ति **'दृष्टमेव ध्रुवं मन्ये पौरुषं तु निरर्थकम्'** के अनुवाद के अतिरिक्त कुछ नहीं है। **'विधिरहो बलवान्'** की भी यही ध्वनि है।

बलवान् व्यक्ति का वर्चस्व सर्वत्र कायम रहता है, पिता ने इस तथ्य को यात्रा पर जाते हुए पुत्र के समक्ष, इन शब्दों में प्रकट किया: "बड़ा आदमी चाहे पहाड़ पर जाये, चाहे बयाबां में जाये, वह कहीं अजनबी नहीं होता। वह वहीं तम्बू गाड़ कर अपना निवास स्थान बना लेता है"(पृ.94)। इसके लिए शेख़ सादी हितोपदेश का ऋणी है। **'को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशस्तथा, यं देशं श्रयते तमेव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम्'** इस पद्यार्ध में जो बात ओजपूर्ण ढंग से कही गयी है, शेख़ सादी ने उसे स्पष्ट शब्दों में कह दिया है।

भारतीय परम्परा में विद्वान को धनवान की तुलना में अधिक आदरणीय माना गया है। शेख़ सादी इस मान्यता से सहमत है। उसके शब्दों में "अपने ज्ञान-भण्डार के कारण वे (विद्वान) जहाँ जाते हैं, उनका आदर-सम्मान और स्वागत होता है। ज्ञानी व्यक्ति शुद्ध स्वर्ण के समान है। वह जहाँ जाता है, वहीं लोग उसके गुणों को जान जाते हैं। धनवान का लड़का चमड़े की गुद्दी के समान है। विदेश में उसे कोई नहीं जानता"(पृ.94)। इस मन्तव्य का स्रोत यह पद्य है जिसमें यही बात अधिक स्पष्टता से कही गयी है--

विद्वत्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।।

यात्रा के दौरान वह युवक नाविकों से झगड़ा कर बैठता है। नाविक उस पहलवान का सामना करने में समर्थ नहीं थे, अतः उन्होंने नाव का भाड़ा न लेने का वादा करके उससे सन्धि कर ली। किन्तु उनके हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला जल रही थी। उन्होंने उसे कपट पूर्वक नौका में बैठा कर नदी में डुबोने का प्रयत्न किया। चकनाश की नसीहत के रूप में इस प्रसंग में कवि का कथन है "यदि तुमने शत्रु को पीड़ा पहुंचाई है तो अपने को रक्षित मत समझो। किले की दीवार पर पत्थर मत फेंको, शायद किले की दीवार से कोई पत्थर तुम पर भी फेंका जाए"(पृ.96)। यह विदुर नीति के निम्नांकित पद्य का सन्दर्भानुसार भावानुवाद है।

अपकृत्य बुद्धिमतो दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत्।
दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हिंसति हिंसितः।।6.8

(बुद्धिमान् का अहित करके कहीं दूर जाकर छिपने से मनुष्य सुरक्षित नहीं हो जाता। बुद्धिमान की बाहें बहुत लम्बी होती हैं, जो अपने दुश्मन को दूर-दूर से खींच लाती हैं।)

कुएं से बलपूर्वक पानी पीने को लेकर वह युवक कुछ अन्य लोगों से भी उलझ गया। उसने उनमें से कितनों को पटक दिया, परन्तु शेष बचे लोगों ने उस जवान को काबू कर लिया और मार-मार कर घायल कर दिया।

यह कैसे सम्पन्न हुआ, इस बात को हाथी के उदाहरण से स्पष्ट किया गया है- "हाथी में बल और साहस के होते हुए भी मच्छरों का झुण्ड उसे परेशान कर देता है। छोटी-छोटी चींटियां मौका पाकर भयंकर सिंह की भी चमड़ी उधेड़ देती हैं"(पृ.98) इस कड़वे सच का स्रोत हितोपदेश है, जहाँ सर्प के उदाहरण से इस बात को अधिक प्रभावशाली शैली में व्यक्त किया गया है।

एकदा न विगृह्णीयाद् बहून् राजाभिघातिनः।
सदर्पो ह्युरगः कीटैर्बहुभिर्नाश्यते ध्रुवम्।।4.92

(राजा को एक साथ बहुत-से विरोधियों के साथ झगड़ा नहीं करना चाहिये। छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े भी मिलकर विषैले साँप की चमड़ी उधेड़ देते हैं)

छठे अध्याय में वृद्ध और जवान पत्नी की कहानी में जवान स्त्री वृद्ध पति की चातुर्यपूर्ण सूक्तियों के उत्तर में अपनी दाई का वाक्य उद्धृत करती है--"यदि तुम किसी जवान औरत के पहलू में तीर लगाओ, तो उसे उस तीर से इतना दुःख नहीं होगा, जितना वृद्ध की सुहबत से(पृ.113)" संस्कृत साहित्य में इस भाव को कई तरह से व्यक्त किया गया है। पंचतन्त्र के पद्य में इसकी सटीक व्याख्या है--

शशिनीव हिमार्तानां घर्मार्तानां रवाविव।
मनो न रमते स्त्रीणां जराजीर्णेन्द्रिये पतौ।।
मित्रलाभ, 110

सातवें अध्याय की दूसरी कथा में विद्वान पिता के उपदेश में संस्कृत साहित्य के कई स्वर मुखरित हैं। उसका यह कथन कि "अगर शिक्षित मनुष्य धनवान न भी हो, तो भी उसे दुःखी नहीं होना चाहिये, क्योंकि ज्ञान स्वयं धन है"(पृ.118), नीतिशतक की सूक्ति **'सुधियो ह्यर्थ विनाऽपीश्वरा'**(15) का भावानुवाद मात्र है।

गुलिस्तां की अन्तिम कहानी में अमीरों और गरीबों की तुलना करते हुए पैगम्बर के हवाले से कहा गया है कि 'दरिद्रता का मुंह दोनों लोकों में काला है'(पृ.121)। प्रसिद्ध सुभाषित **'दारिद्र्य दोषो गुण राशि नाशी'** में दरिद्रता को और भी भयानक चीज़ माना गया है जिससे सारे गुण मलिन या नष्ट हो जाते हैं। वेदव्यास ने तो गरीबी को साक्षात् मौत कहा है **'दारिद्र्य मिति यत्प्रोक्तं पर्यायमरणं हि तत्'** (महा., उद्योग पर्व, 134.13)।

इसी कहानी में आगे कहा गया है कि "धनवान् लोग धनसंग्रह करने के लिए परिश्रम करते हैं, लोभवश उसकी रक्षा करते हैं और उसे त्याग करते समय दुःखी होते हैं"(पृ.113) अर्थात् धन को कमाने, बचाने और खर्च में दुःख ही दुःख है। यह भाव निम्नांकित पद्य से ग्रहण किया गया है।

अर्थानामर्जने दुःखमर्जितानां च रक्षणे।
आ ये दुःखं धिगर्थाः कष्ट संश्रयाः।।
पंचतन्त्र,1.4

इस विस्तृत तुलनात्मक अनुशीलन से स्पष्ट है कि शेख़ सादी ने संस्कृत वाङ्मय का तत्परता से पारायण किया था और गुलिस्तां की रचना में उसका यथा-स्थान सटीक प्रयोग किया है।

संदर्भ

1. गुलिस्तां (हिन्दी अनुवाद), स्टार पब्लिकेशन्स, देहली
2. महाकाव्ये राजाओं के लिये कोई आत्मीय नहीं है, छूने पर अग्नि हवन करने वाले के हाथ को भी जला देती है।

7/34, पुरानी आबादी
नामदेव फ्लोर मिल के पास
श्री गंगा नगर (राज.) 335001
0154-2473343

तड़प में तो कसर कोई नहीं है
मगर उस पर असर कोई नहीं है
मज़ा देखा मियां सच बोलने का
जिधर तुम हो उधर कोई नहीं है
******
बन जाए अगर बात तो सब कहते हैं क्या क्या
और बात बिगड़ जाए तो क्या-क्या नहीं कहते।
- नवाज़ देवबंदी

भक्तकवि अखा की कविताएं

[illegible]

गुजरात के मध्ययुगीन साहित्यकारों में अखा सन् 1591-1656 अगली पंक्ति के भक्त कवि हैं। उनका समय 17वीं शताब्दी का वह समय है जब गुजरात में मुगल राज स्थापित हो चुका था और चारों ओर शांति का वातावरण था। ऐसे माहौल में "गुजराती मध्यकालीन साहित्य में 17वां शतक बड़े महत्व का है। हालांकि 18वीं और 19वीं सदी के कवियों की संख्या बहुत अधिक है, लेकिन गुणवत्ता की दृष्टि से 17वें शतक के कवियों में आख्यानकार प्रेमानंद और तत्वज्ञानी कवि अखा, इन दो कवियों का बहुत-सा सर्जन शिरमौर्य अर्पण स्वरूप है।"

अखा के जन्म के कई दशक पहले महाराष्ट्र में वारकरी भक्ति संप्रदाय ने ज्ञानदेव, नामदेव और तुकाराम के माध्यम से काफी लोकप्रियता प्राप्त कर ली थी। उत्तर भारत में निर्गुण रामभक्ति शाखा के प्रवर्तक कबीर वल्लभ संप्रदाय के आचार्य विट्ठलनाथ, गोकुलनाथ और राजस्थान की मीरां का गुजरात में आगमन हुआ था, बल्कि उन्होंने काफी लोकप्रियता भी प्राप्त कर ली थी। अखा का जिस अहमदाबाद से संबंध था, उनके जन्म के पहले वह गुजरी (खड़ी बोली) में लिखने वाले सूफी कवियों का सबसे बड़ा केंद्र बन चुका था। इन सबका कमोबेश असर अखा की रचनाशीलता पर है। इसके चलते अखा की कविता अखिल भारतीय भक्ति आंदोलन की अविच्छिन्न गुजराती कड़ी एवं क्षेत्रीय जन संस्कृति की अभिव्यक्ति है।

गुरु की खोज में अखा ने उत्तर भारत के गोकुल और काशी की कष्टप्रद लंबी यात्राएं कीं। गुजरात में वल्लभ संप्रदाय की गद्दी पर आसीन गोकुलनाथ से दीक्षा ली, लेकिन बहुत जल्दी उनसे अखा का मोहभंग हो गया। 'गुरु कीधा में गोकुलनाथ, घरडा बळद ने घाली नाथ' धन हरे धोका नव हरे। एवा गुरु कल्याण शुं करे।' आदि आत्मकथ्य उनके मोहभंग के प्रमाण हैं। फिर उन्होंने काशी की यात्रा की और वहां वेदांती ब्रह्मानंद से दीक्षा ली। ब्रह्मानंद अखा की ज्ञान की आंखें खोल दी थीं और वे जीवन भर उत्साह से उसी पर चलते रहे। गोकुलनाथ से मोहभंग होने के बावजूद अखा ने कृष्ण और गोपियों से नाता कभी नहीं तोड़ा। इसलिए अखा की कविता में वारकरी, पुष्टिमार्ग, वेदांत, निर्गुण और सूफी सभी रंग उसकी निजता को रक्षा करते हुए घुल-मिल गए हैं। इन सबसे प्रभाव ग्रहण करने के बावजूद अखा का अपना रंग ही प्रधान है।

अखा के पहले गुजरात में कबीर की निर्गुण भक्तिजन स्वीकृत हो चुकी थी। इसके अलावा भी वेदांत के रंग में लिखने वाले कवियों की एक जमात थी। अखा ने स्वयं कबीर, रैदास, दादू, मीरा का नाम लिया है। अखा के पूर्वगामी गुजरात के ज्ञानमार्गी कवियों में नरसिंह, भीम, मांडण, धनराज पंडित के नाम उल्लेखनीय हैं।

अखा ने गुजराती और हिंदी दोनों भाषाओं में रचनाएं की हैं। मातृभाषा गुजराती होने के कारण उनकी ज्यादातर रचनाएं गुजराती में हैं और लगभग उसकी आधी रचनाएं हिंदी में हैं। दोनों भाषाओं की रचनाओं का विषय आध्यात्मिक है। उमाशंकर जोशी की दृष्टि में अखा 'जीवन की समग्रता' के नहीं, बल्कि उसके धार्मिक अंश के कवि हैं।' एक विषय को अलग-अलग काव्यरूपों, छंदों, भाषाओं में बांधने के बावजूद विषय का विस्तार और विकास कम, दुहराव काफी है। यदि मुक्तक काव्य का उन्हें बड़ा कवि कहा जाए तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

अपने काव्य सृजन, भाषा प्रयोग को लेकर अखा जितने उदार और लोकतांत्रिक हैं ठीक उसके उलट उनके गुजराती और हिंदी आलोचकों की मानसिकता रही है। अखा मध्यकाल की सामासिक सांस्कृतिक गुर्जर-हिंदी अखंड भाषाई चेतना के भक्तकवि हैं, जबकि आधुनिक गुजराती और हिंदी आलोचकों की चेतना उनके भाषा साहित्य के मूल्यांकन में खंडित रही है। गुजराती आलोचकों के लिए अखा की गुजराती रचनाएं महत्वपूर्ण रही हैं और हिंदी रचनाएं अहोभाव का विषय होते हुए भी विवेचन से उपेक्षित। हिंदी आलोचकों की सीमा भी यही रही कि उन्होंने अखा की हिंदी रचनाओं को अपने काम का समझा। इस प्रकार गुजराती-हिंदी आलोचकों ने अखा के समग्र भाषा-साहित्य को दो खानों में बांट कर देखा, लेकिन यह सीमा अखा की नहीं, बल्कि अखा के तथाकथित आलोचकों की रही।

अखा की गुजराती में लगभग दो दर्जन और हिंदी में एक दर्जन रचनाएं हैं। अखा के गुजराती साहित्य का संकलन, संपादन, विवेचन करने वाले गुजराती आलोचकों में श्री नर्मदाशंकर मेहता, श्रीकृष्णलाल झावेरी, के. का. शास्त्री उमाशंकर जोशी, रमण लाल जोशी, भूपेंद्र बालकृष्ण त्रिवेदी, प्रसाद ब्रह्मभट्ट आदि मुख्य हैं और उनके हिंदी साहित्य पर काम करने वाले विद्वानों में डॉ. कुंवरचंद्र प्रकाश, सागर महाराज योगींद्र त्रिपाठी, डॉ. रमणलाल पाठक, रामनाथ प्यारेलाल शर्मा, उर्वशी सूरती आदि के नाम लिए जा सकते हैं। अखा के ज्यादातर गुजराती रचनाएं- पंचीकरण, अनुभव बिंदु, कैवल्यगीता, बारमास, सात-वार तिथि, अवस्था निरूपण आदि छोटी हैं और उनकी कई रचनाएं चित्तविचार, संवाद, गुरु-शिष्य संवाद, छप्पा, अखेगीता आदि बड़ी हैं।

अखा की हिंदी प्रामाणिक रचनाओं की संख्या विद्वानों ने 8 से 12 तक मानी है। संत प्रिया, ब्रह्मलीला, एक लक्षण रमैनी, अमृत कला रमैनी, श्रमार, जकड़ी, झूलना, कुंडलिया, साखियां और पद इनमें मुख्य हैं। इनमें भी ज्यादातर लघु और फुटकल रचनाएं हैं। डॉ. कुंवर चंद्रप्रकाश सिंह पहले ऐसे विद्वान हैं जिन्होंने अखा की हिंदी रचनाओं का 'अक्षयरस' (1963) के नाम से संकलन और संपादन किया। दूसरे विद्वान उर्वशी सूरती हैं जिन्होंने अखा की साखियों को छोड़कर उनकी शेष रचनाओं का 'अखा की हिंदी कविता' के नाम से संकलन संपादन किया।

अखा के गुजराती रचनाओं में गुणात्मक और लोकप्रियता की दृष्टि से अखेगीता, अनुभवबिंदु और छप्पा का नाम सबसे ऊपर है। विचारों की प्रौढ़ता, तात्विक अन्विति, कलात्मक सौष्ठव एवं भावसौंदर्य का जो रूप अखेगीता में आदर्श मिलता है, वह उनकी अन्य रचनाओं में कम ही पाया जाता है।'

अखा के ब्रह्म भक्ति संबंधी विचारों, आत्मसाधना, ब्रह्मेक्यानुभूति के विशिष्ट ग्रंथ हैं अखेगीता और 'अनुभव बिंदु'। दोनों रचनाओं में वे शांभराद्वैत का उल्लेख न करके अपनी सूझ-बूझ से गुजराती में उसकी जनसुलभ व्याख्या करते हैं। मसलन--

परब्रह्म बिना नहिं ठामठालो, एम देखे भरपूर।

ज्यांहा त्यांहां देखे हरि, भाई जेना पडल थया दूर।

भाई भक्ति जेवी पंखिणी जेने ज्ञान वैराग्य बे पांख है।

चिद् आकाश मां तेज उड़े, जे सदगुरु रुपिणी आंख छे।

राम भगति साचा अखा मान बड़ाई त्याग।

जैसे जेहेर छाड़ी रहे बाजीगर का नाग।

(अखा नां काव्यो-अखे गीता, पृष्ठ-44)

गुरु था तारो तुंज, नथी कोई बीजो भजवा।

बाह्य सुर तने राज्य, बाण्य अंतर मां सेवा।

(अनुभव बिंदु, पृष्ठ-20)

उमाशंकर जोशी इन्हीं इन दोनों रचनाओं के आधार पर अखा को सही से पर अनुभवार्थी कवि मानते हैं। उनकी दृष्टि में अखा शांकर द्वैत को अपना विचारों का आधार बनाते हैं, लेकिन वह उसकी अभिव्यक्ति दार्शनिक ढंग के बदले सरस ढंग से करते हैं। उन्होंने दुनिया को दार्शनिक की दृष्टि से नहीं, बल्कि भक्त कवि की आंखों से देखा है।'

अखा की तीसरी महत्वपूर्ण रचना उनके 750 की संख्या के आस पास छप्पा है। इसकी अतिशय प्रसिद्धि का कारण बोलचाल की भाषा में दैनिक जीवन से लिए गए दृष्टांत, रूपक, उपमान और धारदार व्यंग्य हैं। 'अनुभव बिन्दु' में उन्होंने हिंदी परंपरा के छप्पा का अनुसरण किया है। हिंदी परंपरा के छप्पा में चारचरण रोला और दो चरण उल्लाला के होते हैं, लेकिन अखा ने इन्हीं छप्पाओं के माध्यम से तत्कालीन समाज में प्रचलित हर प्रकार की रूढ़ियों की तीखी आलोचना करते हुए बेहतर मानवीय मूल्यों की चिंता की, लेकिन उनके पास इससे भी बेहतर किसी नई सामाजिक व्यवस्था का विकल्प भी नहीं। अखा के छप्पाओं के आधार पर उमाशंकर जोशी का यह कहना उचित है कि उन्होंने अपने छप्पों से सामाजिक पाखंडों का पर्दाफाश करके बहुत बड़ी समाज सेवा की, लेकिन वह समाज सुधारक नहीं है।

छप्पा के कुछ दृष्टांत इस प्रकार हैं

1. व्यास वेश्यानी एकज पेट, विद्या-बेटी ठलेरी सेटे।

व्यास कथा करे ने रडे, आणे जे द्रव्य अदके रूजडे।

2. एक मूरख ने एहेवी टेव, पत्थर एटेले पूजे देव।

पापी देखि करे स्नान, तुलसी देखि तोड़े पान।

3. सो अंधा मां काणो राव, आंधणा ने काणा पर भाव।

शास्त्र नपी छे एकज आंख, अखा अनुभव नी उघड़ी नहीं आंख।

अखा की गुजराती रचनाओं पर गौर करते हुए अधिकांश गुजराती आलोचकों ने अखा की दार्शनिक दृष्टि को उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि माना है। उमाशंकर जोशी, रमनलाल जोशी, धीरू भाई ठाकर, चलचंद जानी आदि इस बात से सहमत हैं। धीरू भाई ठाकर लिखते हैं कि 'गुजराती कविता को अखा तत्वज्ञान के उच्च शिखर तक ले जाते हैं। यह उनकी सर्वोत्तम सिद्धि है। समकालीन समाज दर्शन, भाषा आदि उनकी उपलब्धि को गौण रूप है। उमाशंकर जोशी अखा दार्शनिक दृष्टि के विकास और विशिष्टता को रेखांकित करते हैं कि अखा पहले शुद्धाद्वैत के रंग में डूबे हुए थे, लेकिन किसी एक दर्शन के खूंटे में बंधने की प्रवृत्ति उनकी नहीं थी। बाद में उनका परिचय केवलाद्वैत से हुआ, लेकिन वे उसके भी खूंटे में नहीं बंधे, उन्होंने एक अनुभव लिप्त आत्मा की अदा से केवलाद्वैत का भी अतिक्रमण किया। यदि वे केवलाद्वैत में चिपके रहते तो अखे गीता में भक्ति का वर्णन कैसे कर सकते थे?.... अखा के व्यक्तित्व की यह खूबी है कि वे नए आत्मार्थी थे। इसलिए वे किसी दर्शन को सही या गलत ठहराने के बदले कहीं भी अपनी सहजसूझ और जरूरत के मुताबिक उसका उपयोग कर लेते हैं। (अखो : एक अध्ययन, पृष्ठ 307)

डॉ. कुंवर चंद्रप्रकाश सिंह हिंदी के पहले ऐसे विद्वान हैं जिन्होंने अखा की हिंदी रचनाओं को अक्षय रस में संकलित और संपादित किया। दूसरे विद्वान उर्वशी सूरती हैं, जिन्होंने अखा की साखियों को छोड़कर उनकी 11 रचनाओं को अपने ग्रंथ अखा की हिंदी कविता में संकलित किया और उनपर पर विस्तार से विचार भी किया। गुजराती आलोचकों ने अखा की हिंदी रचनाओं को उनकी गुजराती रचनाओं का हिंदी संस्करण मानते हुए खास तवज्जो नहीं दी थी। अखा के सम्पूर्ण सर्जनात्मक व्यक्तित्व के परख की दृष्टि से दोनों विद्वानों की भूमिका अनिवार्य को हद तक महत्वपूर्ण है। डॉ. रमणलाल पाठक का योगदान भी इस दिशा में बड़े महत्व का है। अखा की हिन्दी रचनाओं में 'संतप्रिया' सबसे महत्वपूर्ण मानी जाती है। कुछ विद्वानों ने इसमें छंदों की संख्या 137 तो कुछ ने 139 मानी है। केशव, बिहारी जैसे राजाश्रित कवियों की कृतियों-कविप्रिया, रसिक प्रिया, आदि के विरोध में अखा की संत प्रिया जान पड़ती है। कारण कि इसका प्रयोजन किसी राजा को खुश करना या किशोर-किशोरी को काव्यशिक्षा देना, रसिक को रस की शिक्षा देना और अलंकार प्रदर्शन नहीं है। इसकी रचना संतों को ध्यान में रखकर की गयी है--'संतप्रिया संत कुरूने।' इसलिए इसका विषय काव्य-शास्त्रीय न होकर भक्ति परक-- ब्रह्म-आत्मज्ञान, गुरु-महिमा, कंचन-कामिनी निंदा, सगुण निर्गुण भेद और स्वानुभूति, आत्मोद्बोधन आदि है। नमूने के तौर पर दो उदाहरण दिये जा रहे हैं।

1. रे मन राम रुदे न पहेचान्यो, कौन तू नींद सोयो रे गुमानी।

ओस को नीर त्यु धन-जोबन, ज्यों धन में बीजुरी मुसकानी।

ताही में मोती तू प्रोइले प्रानी, सेइले संत सदगुरु ग्यानी।

हंस कला गुरु देवे अखो कहे, न्यारा करे दूध रहे पानी को पानी।8

2. राम नहीं जु जातांन अनूपे। राम नहीं जु अयान झोलावनां।

नाच्यन-गावन थे राम री झे। राम नहीं पाहांण में लाव नां।

आश्रम-वर्ण भरोसे को भूद। कवि कला रस करत के ललनो।

कहते अखा मृग वाद्य झकोले थे। मानत है हम गंग झीलवना।

(अखा की हिंदी कविता-संत प्रिया, छंद 207, पृष्ठ 308)

'ब्रह्मलीला' 48 छंदोवाली अखा की दूसरी महत्वपूर्ण रचना मानी जाती है। इसमें विवेचन तो ब्रह्म का है, लेकिन शैली सगुण-लीला काव्य की है। अखा ने अपनी इस रचना में गणेश, सरस्वती आदि देवताओं का ब्रह्म में पर्यवसान करते हुए अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया है। उदाहरण के लिए 'ऐसे रमन चल्यो निज रासा। प्रकृति-पुरुष को निविध विलास। जैसे भांत रची चित्रशाला। नाना रूप लखे ज्युं रसाला।। (अखा की हिन्दी कविता-ब्रह्मलीला, कड़वक-3 पृष्ठ-298)' 'रमैनी' के रूप में अखा ने 'एकलक्ष' और अनुत कला की रचना की है जिनमें 27-27 साखियाँ हैं। दोनों में उन्होंने ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण किया है।

अखा के नाम से 59 'जकड़ियां' और 109 झूलना के छंद मिलते हैं। जकड़ी गुजराती का देशी लोकगीत है। अखा के पहले गुजरात के पुराने सूफी कवियों ने इसका प्रयोग किया था। अखा अपनी जकड़ियों में

सूफियों के समान परमात्मा और जीवात्मा के संबंध को पति-पत्नी के उल्लासपूर्ण लौकिक संबंध के रूप में वर्णित करते हैं। उर्वशी सूरती अखा जकड़ियों की संख्या 43 मानती हैं। जकड़ी का एक दृष्टांत प्रस्तुत है-

सहज-सहज साजन घर आया। जे भेद किताबु नाहीं लखाया।

मीठी बातां सूरजन केरी। फरी-फरी जोऊं सुणुं घणेरी।

सो साजां साथां पूरी मेरी।

अगम अगोचर कहिते सारे। पढ़ते-पढ़ते पंडित हारे।

सो सूरिजन सुधि लइ रे सवारे।

साधे आवत हूं गले लागी। मेरे शाह ने कीता सोहागी।

छोडी निद्रा तब खरी जागी।

(गुजराती संतों की हिन्दी वाणी, पृष्ठ-37)

अखा के 'झूलना' का संकलन जगन्नाथ त्रिपाठी, डॉ. कुंवर चन्द्र प्रकाश सिंह और उर्वशी सूरती तीनों ने किया है। वेदांत और सूफियाना रंग झूलना में घुलमिल गये हैं। 'जकड़ी' में जहां संयोग श्रृंगार है वहीं 'झूलना' में विरह वर्णन की प्रधानता है। झूलना का नमूने के तौर पर एक उदाहरण पेश है--

- हूं निकली प्रियुजी को ढूढने को। जाइ ईंट-पत्थर में खोज देखा।।

पूछ्या पूरब पश्चिम के नभ तारे को। वो भी कहे हम नाहिं देखा।।

हार पड्या हासिल हूआ। जब मुर्शिद ने कल कही।

रह्या आपे आप सांई ज अखा। इतनी सो तिनु कही।

(अखा की हिंदी कविता, झूलना, छंद-13, पृष्ठ-547)

अखा की जकड़ी और झूलना मुक्तक काव्य रूपों का मिजाज अखा की अन्य हिंदी रचनाओं से अलग है। अखा की अन्य हिंदी रचनाओं का भाषिक मिजाज व्रजभाषा की ओर विशेष झुका है, जबकि जकड़ी और झूलना के भाषिक ठाठ में खड़ी बोली की प्रधानता है। पंजाब, हरियाणा, दिल्ली के आस-पास से आकर गुजरात में बसे गुजरी सूफी कवियों की काव्य भाषा का मिजाज भी यही है।

अखा के नाम से हिंदी में कुछ कुंडलियां मिलती हैं। 'अक्षयरस' में अखा की 25 कुंडलिया संकलित हैं, लेकिन डॉ. रमण लाल पाठक इनमें से चार को गुजराती मानते हैं। कुंडलियों का विषय सामान्यतः ब्रह्म निरूपण, गुरुमहिमा, ईश्वरप्रेम, अज्ञान त्याग, विरह, वैराग्य एवं नीति विषयक है।

'पद' की शैली में अखा की तीन हिंदी रचनाएं मानी जाती हैं। धमार, विष्णु पद और पदावली। इनकी संख्या 100 के आस-पास मानी जाती है। उर्वशी सूरती अखा के धमारों के पदों की संख्या 14, विष्णु पद की संख्या 31 और पदावली की संख्या 61 मानती हैं। तीनों के पद उस समय प्रचलित किसी न किसी राग-रागिनी-कल्याण, केदारो, सारंग, मारु, सामेरी, गौड़, मालश्री, बसंत, विहागड़ो आदि में हैं। राग-रागिनी के कारण वे संगीत के सुर में सधे हुए हैं और इनमें अद्भुत रागात्मकता है। पाठकों को तन्मय कर देने वाली क्षमता अखा के गुजराती और हिन्दी दोनों प्रकार के पदों में है। कहीं इनमें भावों की लहक है तो कहीं भावों के बहाव में विचारों की चमक है।

'धमार' को अखा हिंदी क्षेत्र से गुजरात में लाते हैं। बसंत के मौसम (फागुन और चैत्र) में हिंदी क्षेत्र के लोग फाग और धमार गाते हैं। जायसी ने अपने पद्मावत के नागमती वियोग खंड में इसे याद भी किया है- 'चैत बसंता होइ धमारी। मोहिं लेखे संसार उजारी।' यह प्रधानतः प्रेमोल्लास का गीत है। अखा ने अपने धमार (धुवायें) गीतों में इसकी पूरी रक्षा भी की है। उनके धमार गीतों की टेक-'आयो बसंत री, रत्य पलटि मनकोरा हो।', 'आयो रे फागुन मास, खेलो खेल आतम आप में'-उल्लास की सूचना देने लगती है। भावों की यही उमंग उनके गुजराती पदों में मिलती है। जैसे कि-- 'आज आनंद मारा अंग मां उपन्यो, परिब्रह्म मुने भाल लागो।

गंगा नी सानना सामी समझे नहीं, अदबद मूरड़ी रहो रे बांधी।'

अखा के पदों में जहां एक ओर कृष्ण भक्ति, राधा, गोपी और कृष्ण के प्रेम का रंग है वहीं दूसरी ओर निर्गुणिया भक्ति का भी रंग है। वे अपने पदों में सगुन-निर्गुण की हदद बांधने के बदले नरसी मेहता की तरह उनका अतिक्रमण कर जाते हैं। सोम भाई पटेल का कहना बिल्कुल सही है कि 'अखा के गुजराती उसी प्रकार हिंदी दोनों प्रकार के प्रेमलक्षणा भक्ति के पदों में उनकी वेदांती अद्वैत विचार धारा की मुद्रा अंकित हुई है. उनके पदों में नायिका, सखा प्रेमभक्ति की उपासक होने के साथ-साथ वेदांती तत्वदृष्टि वाली भी है।'' दरअसल अखा की दृष्टि 'नेज जानी जने गांगी नी दशा' स्वयं इसका समर्थन करती है।

अखा के पदों में वह निर्गुणिया रंग भी मिलता है जो उनके पहले मराठी के नामदेव और हिन्दी क्षेत्र के कबीर, रैदास, दादू दयाल के पदों में मिलता है। दृष्टांत के रूप में दो उदाहरण दिये जा रहे हैं--

राम रमे जुग सारा, संतो भाई राम रमे जुग सारा।

मैं तो किया है वस्तु विचारा।

पूरण ब्रह्म रह्या भर पूर। सकल भाव हरि राया।

त्रेता जुग में कोई न आया। विरला जननि आया।

(अखा की हिन्दी कविता, पदावली-50, पृष्ठ 592)

ज्ञान धरा चढ़ आई, अचानक ज्ञान धरा चढ आई

अनुभव जल बरखा बड़ी बूंदन, कर्म की कीच रेलाई।

दादुर मोहोरे शब्द संतन के। ताकी शून्य मीठाई।

चहु दिश चित चमकत आपन-पो। दामनी-सी दमकाई।

घोर घोर घन गरजत घे हेरा, सतगुरू ज्ञान बताई।

उमगि उमगि आवत है निसिदिन, पूरब दिशा जनाई।

(गुजराती संतों की हिन्दी वाणी, पृष्ठ-38)

अखा के नाम पर बहुत-सी साखियां गुजराती और हिन्दी दोनों भाषाओं में मिलती हैं. केशवलाल ठक्कर ने पहले-पहल अखा की गुजराती साखियों का संकलन किया। डॉ. कुंवर चन्द्र प्रकाश सिंह ने 'अक्षयरस' में अखा की पन्द्रह सौ साखियों का संकलन किया है। उर्वशी सूरती का मानना है कि 'हिन्दी साखियों की विषय वस्तु और स्वरूप गुजराती साखियों के समान है। और संभव है कि उन्हीं का हिन्दी में अनुवाद कर दिया गया हो। परंतु संख्या की दृष्टि से गुजराती में कम है।' (अखा की हिन्दी कविता, पृष्ठ-114) दर असल रमैनी और साखी उत्तर भारत के निर्गुणिया कवियों के अत्यंत प्रिय काव्यरूप रहे हैं और अखा उनकी प्रेरणा से इन काव्य रूपों को लेकर गुजरात में आते हैं। इसलिए इस बात की अधिक संभावना है कि अखा ने पहले हिंदी में साखियां रची हों और कुछ सध जाने के बाद गुजराती में इनका प्रयोग किया हो। इनकी हिन्दी साखियों का परंपरागत विषय-आत्म ज्ञान, स्वानुभूति, आंतरिक साधना, बाह्याचार आलोचना आदि है। नमूने के तौर पर कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं--

आत्मज्ञान न ऊपज्या तो गुन ऊपजे का होय।

नवलख तारा जो अखा दिनकर कहे न कोय।

तन उजले मन उजला और उजले कपड़े अंग

एक मन मैले सब मल भया, जो उजला न मिला हरि संग।

(अक्षयरस, साखी-आत्मा को अंग, पृष्ठ 174)

ज्ञान तिलक दीवा भलो, एक भावना भाल।
दीनी छाप निरंजना, बन्यौ बैरागी लाल।
टोपी सिर अर्ध मात्रिका, गुदड़ी रंग पंचभूत।
फूल माल निरवासना, सेली सुरत अद्भुत।

(अक्षयरस, साखी-वेष को अंग 1,2)

हिन्दी के निर्गुणिया कवियों के काव्य रूप, विचार धारा और भाषिक मिजाज के सादृश्य के चलते अखा को गुजरात का कबीर कहते हैं और कबीर से उनकी तुलना भी की जाती है। अनंत रावल बड़े गर्व के साथ लिखते हैं कि 'अखा के हिन्दी में लिखे अनेक पद कबीर आदि के भजन साहित्य के परिचय के परिणाम हैं। --- भालण और मीरा के समय से लेकर दलपत राम तक गुजराती कवियों ने स्वेच्छा से हिंदी में भी अपनी कलम चलाई है। वह इसी परंपरा की परिणति कही जायेगी आज राष्ट्रभाषा होने के लिए प्रयासरत हिन्दी गुजरात के मध्यकाल में राष्ट्रभाषा बन चुकी थी।' (गुजराती साहित्य (मध्यकाल) पृष्ठ-118) डॉ. रामनाथ धूरेलाल शर्मा ने कबीर और अखा की विचारधारा का तुलनात्मक अध्ययन किया है उन्हों दोनों की विचारधारा के बीच सादृश्य के साथ उनके वैशिष्ट्य को भी उजागर किया है, जैसे कि अखा में अपने स्वमत को कबीर से ज्यादा शास्त्र प्रमाणों से पुष्ट करने की प्रवृत्ति है। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक विसंगतियों के प्रति कबीर का प्रतिकारक स्वर अधिक तीक्ष्ण, बेधक और क्षोभयुक्त है। दलित समाज का कबीर का अनुभव अखा से अधिक ठोस और व्यापक है। कबीर की तुलना में अखा ने संयोग श्रृंगार को अधिक महत्त्व दिया है।

अखा की कविता के प्रवृत्ति के बारे में गुजराती और हिन्दी आलोचकों में काफी मत भेद है। नर्मदाशंकर मेहता अखा की रचनाओं में 'शुद्धकविता' का अभाव देखते हैं, जबकि गोवर्धन राम त्रिपाठी अखा के काव्य को प्रधानतः ध्वंसात्मक मानते हैं। उमाशंकर जोशी, रमणलाल जोशी आदि पक्षपाती हैं। डॉ. कुंवर चन्द्र प्रकाश का मत अलग है। वे अखा की गुजराती वाणी को ध्वंसात्मक प्रधान और हिंदी वाणी का स्वर रचनात्मक मानते हैं। (अक्षय रस, प्रस्तावना, पृष्ठ 48)

अखा की काव्य संबंधी अवधारणा तत्कालीन काव्य की प्रचलित अवधारणा और उसकी मर्मज्ञता से अलग प्रकार की है। आश्रयदाता की प्रशंसा और कवित्व प्रदर्शन अखा का साध्य नहीं है। कविता उनकी आध्यात्मिक अभिव्यक्ति का अनिवार्य प्रभावशाली माध्यम मात्र है। आध्यात्मिक वस्तु की अभिव्यंजन ही उनका साध्य है। उन्होंने लिखा है कि 'ज्ञानी ने कविता न गणेश, कियण भूषे ना केम कलेश' (अनुभव बिंदु, छप्पा-22) 'संत प्रिया' में अखा ने अपनी कविता संबंधी विचारों को और स्पष्ट किया कि-

देवता ना देवी आराध्य, पिंगल न व्याकरण साध्य।

आगम गावे अगाध्य जहां मयां नहीं ईश्वरी।
नाहीं को रीझने काज्य, जैसे सुधा धन गाज्य,
आने कोई राज्य अखा की कवेश्वरी।

(संतप्रिया, छंद-119)

उनका काव्य जनता को संबोधित-तर्क और प्रयोजन भी अपनी बात को जनता की भाषा में जनता तक पहुंचाना है। इस बारे में उनके ये कथन पढ़े-लिखे लोगों की जबान पर है।' अखो शु कविताए‍ण कहे, जो वात कशी न पहुंचे रारे।' और 'भाषा ने शु दैनन्दिन भाषा का यही रूप उनकी भाषा को जानदार बनाता है और असरदार भी। उनके दृष्टांत उपमान, कल्याणगे शूर। जे रण नां जीते ते शूर।। संस्कृत बोले शु थयु, प्राकृत मां थी नासी गयु। दैनन्दिन भाषा का यही रूप उनकी भाषा को जानदार बनाता है और असरदार भी। उनके दृष्टांत उपमान, कटाक्ष जनता के बीच से होते हुए साहित्य के आसन के अधिकारी बन जाते हैं। उनकी लोकप्रियता और बड़प्पन का कारण तत्कालीन जनता से उनका गहरा नाता और लगाव है। उमा शंकर जोशी ने उचित लिखा है कि 'अखा हसांड कवि है और उनका उन्मुक्त हास्य गुजराती साहित्य का भूषण है। उन्होंने जिस प्रकार हास्य रस की सृष्टि की है उस प्रकार की सफलता गुजराती साहित्य में बहुत कम लेखकों को मिली है।

उनकी प्रारंभिक कृतियों में हमें उपहास और कटाक्ष के रूप में हास्य मिलता है, लेकिन आत्मानुभव की गहराई में गोता लगाने के बाद उनके हास्य का रूप प्रकृत्या बदल जाता है। अभी तक लोकप्रियता का कारण उनका उच्चकोटि का हास्य है और उनके बड़प्पन का कारण दूसरे प्रकार की रचनाएं हैं। (अखो एक अध्ययन, पृष्ठ 354 355) कटाक्ष, उपहास का यही मिजाज अखा को कबीर के साथ खड़ा करता है।

अखा अपने समय में प्रचलित गेर कथात्मक काव्य रूपों- गुजराती हिन्दी, पंजाबी, सांहिन्यिक-मौखिक, छंदो को अपनाने में अपनी काव्य भाषा की तरह ही उदार हैं। ऋतु काव्य (बारहमासी) से लेकर तिथि, वार, कक्को, झूलना, जकड़ी, धमार, संवाद लीला आदि सबको ग्रहण करने में उनमें कोई संकोच नहीं है। इस प्रकार अपने समय में हिन्दी, गुजराती में प्रचलित मात्रिक गेर मात्रिक छंदों चौपाई, दोहा, सोरठा, कुंडलिया, सवैया, सब उनके लिए हस्तामलक है। ये काव्य रूप, छंद, भाषा शैली की दृष्टि से सच्चे अर्थों में अपने युग के जनप्रतिनिधि कवि है। गुजराती, खड़ी बोली, ब्रज, पंजाबी शब्दों का मिश्रण उनकी भाषा में अद्भुत है। इसके बावजूद उनकी भाषा में किसी प्रकार की अस्पष्टता और दुरूहता का लेश नहीं है। अपने समय की शायद ही कोई ऐसी काव्यशैली हो जो उनसे अछूती रह गयी हो। छंदो में पिंगल शास्त्र की बहुत परवाह न करने के कारण उनमें काफी खुलापन है।

गुजराती आलोचकों ने अखा की काव्योपलब्धि को गुजराती काव्य परंपरा के भीतर देखा है। यदि वे गुजराती के साथ हिन्दी काव्य परंपरा के भीतर अखा के काव्य को देखते तो अखा का कवि व्यक्तित्व और समृद्ध होता। यह सीमा अखा के काव्य की नहीं, बल्कि साहित्य और भाषा को हद बांध कर देखने वाले आलोचकों की है। फिर भी उमाशंकर जोशी की यह बात गुजराती काव्य परंपरा में अखा के लिए बिल्कुल सही है कि 'वे भाषा के उत्तम कवियों की बराबरी के आसन के अधिकारी है। गीत कविता का शिखर जिस प्रकार नरसिंह, मीरा, दयाराम ने जीता है, लोक स्वभाव की चोटी जिस प्रकार प्रेमानंद ने सर की है उसी प्रकार अखा ने तत्त्वविचार की कविता की सबसे ऊंची चोटी पर अपनी धुनी रमाई है।' अनंतराय रावल ने अखा की उपलब्धि की पहचान दूसरे तरह से की है। 'अलबत्त नरसिंह, मीरा और दयाराम का माधुर्य या प्रेमानंद का प्रसाद उनके काव्यगुण नहीं हैं। उनका काव्यगुण ओजस् है और उनकी कविता का पाक नारिकेल पाक है। ये दोनों गुण मध्यकालीन गुजराती कवियों में उन्हें अनन्य ठहराते हैं।'[5] गुजराती के साथ हिन्दी, ब्रज और खड़ी बोली दोनों में लिखने के चलते अखा हिन्दी के विस्तार और गुजराती अवहित्था संस्कृति के वैशिष्ट्य के साथ उसकी समृद्धि के ध्वजा वाहक भी हैं।

संदर्भ

1. अखानां काव्यो-सं. रमणलाल जोशी, आदर्श प्रकाशन-अहमदाबाद, पृष्ठ-07, द्वितीय आवृत्ति सन् 1993
2. गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)- अनंतराय रावल, गुर्जर ग्रंथ रत्नकार्यालय- अहमदाबाद, पृष्ठ-111, पांचवीं आवृत्ति-1992
3. अक्षयरस सं. डॉ. कुंवर चन्द्र प्रकाश सिंह, महाराजा सयाजी विश्वविद्यालय बड़ौदा, प्रथम संस्करण-सन् 1963
4. अखा की हिन्दी कविता- डॉ. उर्वशी सूरती, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण-संवत् 2046 (सन् 1989)
5. कबीर और अखा की विचारधारा का तुलनात्मक

अध्ययन-डॉ. रामनाथ घूरेलाल शर्मा विश्व-विद्यालय प्रकाशन वाराणसी, प्रथम संस्करण-1983

6. अखा - एक अध्ययन- उमाशंकर जोशी, गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद, पृष्ठ-204, द्वितीय संस्करण-1973

7. गुजराती साहित्य की विकास रेखा (मध्यकालीन) धीरूभाई ठाकर, गुर्जरग्रंथ रत्न कार्यालय, अहमदाबाद, संशोधित-संवर्धित संस्करण 1993, पृष्ठ-45

8. गुजराती संतों की हिन्दी वाणी-प्र.सं. डॉ. रामेश्वर लाल खंडेलवाल, सरदार पटेल युनिवर्सिटी, वल्लभ विद्यानगर, संस्करण-1971, पृष्ठ 41

9. मध्यकालीन गुजराती कविता में प्रेमलक्षणा भक्ति-सोमभाई पटेल, पार्श्व प्रकाशन, अहमदाबाद, प्रथम आवृत्ति 1987, पृष्ठ-133

10. कबीर और अखा की विचारधारा का तुलनात्मक अध्ययन-रामनाथ घूरेलाल शर्मा, पृष्ठ-396

11. अखो : एक अध्ययन-उमाशंकर जोशी, पृष्ठ 267

12. गुजराती साहित्य (मध्यकालीन) अनन्त राम रावल, पृष्ठ-121।

हिन्दी विभाग,
सरदार पटेल विश्वविद्यालय
वल्लभ विद्यानगर

आत्मसुधार

एक बार एक व्यक्ति ग्रीष्म पहाड़ पर चढ़ा, वहां पर उसे एक महिला दिखी, वह व्यक्ति बहुत अचंभित हुआ, उसने जिज्ञासा व्यक्त की कि 'वे इस निर्जन स्थान पर क्या कर रही हैं।' उन महिला का उत्तर था 'मुझे अत्यधिक काम है।' इस पर वह व्यक्ति बोला 'आपको किस प्रकार का काम है, क्योंकि मुझे तो यहां आपके आसपास कोई दिखाई नहीं दे रहा।' महिला का उत्तर था 'मुझे दो बाजों को और दो चीलों को प्रशिक्षण देना है, दो खरगोशों को आश्वासन देना है, एक सर्प को अनुशासित करना है और एक सिंह को वश में करना है।' व्यक्ति बोला 'पर ये सब है कहाँ, मुझे तो इनमें से कोई नहीं दिख रहा।' महिला ने कहा 'ये सब मेरे ही भीतर हैं।'

दो बाज जो हर उस चीज पर गौर करते हैं जो भी मुझे मिली, अच्छी या बुरी। मुझे उन पर काम करना होगा, ताकि वे सिर्फ अच्छा ही देखें ये हैं मेरी आँखें।

दो चील जो अपने पंजों से सिर्फ चोट और क्षति पहुंचाते हैं, उन्हें प्रशिक्षित करना होगा, चोट न पहुंचाने के लिए ये हैं मेरे हाथ।

खरगोश यहाँ-वहां भटकते फिरते हैं पर कठिन परिस्थितियों का सामना नहीं करना चाहते। मुझे उनको सिखाना होगा पीड़ा सहने पर या ठोकर खाने पर भी शान्त रहना वे हैं मेरे पैर।

गधा हमेशा थका रहता है, वह जिद्दी है। मैं जब भी चलती हूं, यह बोझ उठाना नहीं चाहता, इसे आलस्य प्रमाद से बाहर निकालना है यह है मेरा शरीर.

सबसे कठिन है सांप को अनुशासित करना। जबकि वह 32 सलाखों वाले एक पिंजरे में बन्द है, फिर भी वह निकट आने वालों को हमेशा डसने, काटने, और उनपर अपना जहर उड़ेलने को आतुर रहता है, मुझे इसे भी अनुशासित करना है यह है मेरी जीभ।

मेरा पास एक शेर भी है, आह। वह तो निरर्थक ही घमंड करता है। वह सोचता है कि वह तो एक राजा है। मुझे उसको वश में करना है यह है मेरा मैं।

तो मित्र, देखा आपने मुझे कितना अधिक काम है। सोचिए और विचारिये हम सब में काफी समानता है अपने ऊपर बहुत कार्य करना है, तो छोड़िए दूसरों की परवाह, निंदा करना, टीका-टिप्पणी करना और उस पर आधारित नकारात्मक धारणायें बनाना। चलें पहले अपने ऊपर काम करें।

11वीं 12वीं शताब्दी का जैन तीर्थ "तिमनगढ़"

डॉ. रामजीलाल कोली

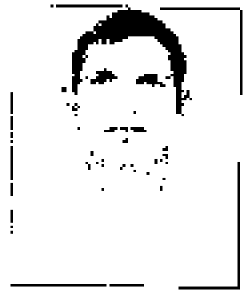

राजस्थान के करौली जिले की डांगधरा की दुर्गम स्थली में सागर नामक तालाब के किनारे त्रिभुवनगिरि नामक सुरम्य पहाड़ी पर यह दुर्ग स्थित है। यह दुर्ग 1309 फीट ऊंची पहाड़ी पर 9 वर्ग कि. मी. क्षेत्र में बना हुआ है. यहाँ के मूल शिलालेख तिमनगढ़ प्रशस्ति के अनुसार इस दुर्ग का निर्माण यदुवंशी शासक त्रिभुवनपाल (तिमनपाल) ने अपने निज नाम से 11वीं शताब्दी के मध्यकाल में कराया था। प्रशस्ति के अनुसार त्रिभुवनपाल (तिमनपाल) संवत 1142 में यहाँ शासन कर रहा था। इस दुर्ग पर यदुवंशी शासक तिमनपाल, धर्मपाल, सहनपाल व कंवरपाल आदि शासकों ने शासन किया 'कंवरपाल के शासन काल में मोहम्मद गोरी ने 1196 ई. में दुर्ग पर आक्रमण कर अपने अधिकार कर लिया।' तिमनगढ़ दुर्ग का नाम अपभ्रंश साहित्य में त्रिभुवनगिरि, तिहुयणगिरि', फारसी साहित्य में थनगर, थनगिर तथा यहां से प्राप्त एक फारसी शिलालेख में इस्लाम बाद नाम से भी उल्लेखित किया गया है। तिमनगढ़ प्रशस्ति के अनुसार यह दुर्ग त्रिभुवनगिरि दुर्ग' के मूल नाम से जाना जाता था।

वर्तमान दुर्ग के खण्डहरावशेषों में जैन, वैष्णव व शैव मतावलम्बियों के अनेक मन्दिर स्थित है, जो इस दुर्ग के धार्मिक महत्व को प्रदर्शित करता है। दुर्ग के परिसर में मुख्य प्रवेश द्वार जगन पोर के नाम से जाना जाता है तथा पूर्व के द्वार को सूरजपोर के नाम से जाना जाता है। दुर्ग में अनेक महल, भवन, मन्दिर, सरोवर, कूप, बाजार, आदि स्थित है। तिमनगढ़ दुर्ग-नगर की बनावट व बसावट अति सुन्दर है। यहां कला का वैभव देखने को मिलता है। दुर्ग-नगर में राज परिवारों के साथ-साथ सम्भ्रांत लोगों का निवास था जिनमें जैन श्रेष्ठियों के आवास व प्रतिष्ठान आज भी यहां के भग्नावशेषों में देखने को मिलते हैं। जिनघर जिन प्रतिमाओं का अंकन मिलता है। सम्पूर्ण दुर्ग-नगर में स्थापत्य कला के उत्तम उदाहरण यहाँ के मन्दिरों व जिनालयों में देखने को मिलता है इन जिनालयों के पाषाण खण्डों पर सुन्दर-सुन्दर आकृतियां को उत्कीर्ण किया गया है समकालीन जैन लेखक लक्ष्मण ने जिनदत्त चरित्र (सं. 1275) नामक कृति में इसकी सुन्दरता के कारण इसे स्वर्ण खण्ड के समान बतलाया गया है।5 इन जिनालयों का निर्माण राज्याश्रय एवं जैन श्रेष्ठियों के दान द्वारा किया गया था। यहां का शांतिनाथ जिनालय बड़ा ही विशाल एवं सुन्दर निर्मित किया गया था।

इसके अलावा यहां के पुरातात्विक अवशेषों में सैकड़ों जिनालय स्थित हैं जो वर्तमान में जीर्ण-शीर्ण अवस्था में हैं। दुर्ग के उत्तर-पश्चिम भाग में माथुर संघ के जैन मुनि बालचन्द का एक भव्य स्मारक (सं.1232) है जिसके स्तम्भ, मण्डप, शिखर बहुत ही कलात्मक दृष्टि से उत्कीर्ण कर निर्मित किया गया है। जिसमें घन्टा, पुष्प, घण्ट श्रृंखलाओं का बहुत सुन्दर अंकन देखने को मिलता है। इस स्मारक के स्तम्भ लेखों पर मुनिवर बालचन्द का नामोल्लेख व पदुकाओं का अंकन किया गया है। उपकेशगच्छ के मुनि शांतिसागर ने एक जिनालय बनवाया तथा इसमें अपने कर कमलों से प्रतिमा प्रतिष्ठित करवाई।

दुर्ग-नगर के पुरावशेषों में आज भी हजारों खण्डित जिन प्रतिमाएं देखने को मिलती हैं। यहां के जिनालयों में मूल प्रतिमा के अलावा भित्तियों, मण्डपों, स्तम्भों पर अनेक देव प्रतिमाओं को उत्कीर्ण किया गया है। यहां लघु प्रतिमाओं से लेकर विशालकाय जिन प्रतिमाएं स्थित हैं। दुर्ग-नगर के दक्षिणी-पूर्वी भाग में लगभग 15 फीट ऊँची खण्डित जिन प्रतिमा आज भी स्थित है। यहां प्राप्त भगवान पार्श्वनाथ की एक प्रतिमा लेख (सं.1234) के अनुसार यहां के अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई थी। इसी प्रकार भगवान शांतिनाथ के एक प्रतिमालेख (सं.1109) के अनुसार इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा देवसुंदरसूरि व भट्टारक जयसिंहसूरि, श्रावक पासु, उसड़, पार्श्व ने करवाई थी। निषिदिकाओं (स्मृति स्तम्भों) के शीर्ष भाग पर भगवान महावीर व पार्श्वनाथ की प्रतिमाओं को उत्कीर्ण किया गया है। मैंने अपने अनुसंधान कार्य के दौरान किये सर्वेक्षण में यहां के खण्डहरावशेषों में स्थित खण्डित जिन प्रतिमाएं मुझे मिली थी जिनके आधार भाग पर अंकित लेखों में श्रावक-श्राविकाओं, क्षुल्लक-क्षुल्लिकाओं या आर्यिकाओं व मुनियों का नामोल्लेख मिलता है। जिनमें एक भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा लेख (सं. 1234) पर श्रावक तिहुण पत्नी माहली पुत्र सांचेड, कामड़, आमर, श्रीधर बहिन आपकमति का पुत्र फाहड़, श्रावक, सावड पत्नी देव श्री पुत्र चाहड, कमंढ, पत्नी गल्हा पुत्री पाथा गोल्हिका, गोविन्द, पाम, कांजड़, वीरू, बिल्हण, चाहू, पीथु, वासुदेव, कुमडण, कर्मेढ पत्नी दापू, महनपाल, भावट श्राविका माहली पुत्री मदना, रतना, सरदा, रहव, पदम श्रावक जगता पुत्र प्राणभग श्रावक लोला पुत्र रतनपाल श्राविका आल्हणी पुत्र कुंवरपाल, देव श्री व उदय श्री श्रावक मोहचन्द, जसपाल, गोविन्द, लखमण, जिणचन्द, श्राविका सेल्हा, केल्हा इसी प्रकार एक अन्य भगवान शांतिनाथ की प्रतिमा लेख (सं. 1109) पर मुनि देवसुन्दरसूरि, भट्टारक जयसिंहाचार्य श्रावक श्री पासु, उसड, पार्श्व का नामोल्लेख मिलता है। दूसरी ओर यहां मूर्तिकारों की कार्यशालाओं के अवशेष मिलते हैं जिनमें स्थानीय पाषाण खण्डों को तराशकर मूर्तियां बनाई जाती थी तथा यह मूर्तियों के व्यापार का एक केन्द्र था लेकिन 1196 ई. में मुहम्मद गोरी ने आक्रमण कर यहां के जिनालयों को ध्वंस व प्रतिमाओं का भंजन कर दिया जिसके पश्चात यह दुर्ग नगर वीरान होता चला गया।

तिमनगढ़ के यदुवंशी शासक वैष्णव धर्म के उपासक थे। लेकिन आचार्य जिनदत्तसूरि ने यहाँ के राजा को प्रतिबोध देकर यहां के राजवंश को जैन धर्म का अनुरागी बनाया। यहाँ के राजाओं ने जैन धर्म को राज्याश्रय प्रदान कर जिनालयों के निर्माण में सहयोग प्रदान किया तथा जैन मुनियों का सदा सत्कार किया। यहां दिगम्बर व श्वेताम्बर सम्प्रदायों के श्रावक-श्राविकाएं बहुतायत संख्या में निवास करते थे। यहां के अनेक श्रावक-श्राविकाओं के नामोल्लेख जिन प्रतिमाओं व निषिदिकाओं पर मिलता है। यहां प्राप्त शिलालेखों में जिन संघों का उल्लेख मिलता है उन में माथुर संघ, मूल संघ, नंदी संघ, खरतरगच्छ व उपकेशगच्छ प्रमुख है। इस प्रकार यह धर्म यहां दो सदियों तक फलता-फूलता रहा तथा जैन विद्वानों व मुनियों द्वारा साहित्य रचना का कार्य होता रहा। यहां खरतरगच्छ आचार्य दादा जिनदत्तसूरि ने यहां विहार कर यहां के राजा व प्रजा को धर्मोपदेश दिया तथा भगवान शांतिनाथ के एक भव्य जिनालय की स्थापना करवाई थी जिसके उपरान्त यहां अनेक जैन मुनि विहार करते और धर्मोपदेश देते रहे। इसी श्रृंखला में जिनदत्तसूरि के पट्टधर आचार्य मणिधारी जिनचन्द्रसूरि ने विहार कर यहां के शांतिनाथ जिनालय के शिखर पर ध्वजदण्ड एवं कलशाभिषेक महोत्सव कराया तथा प्रतिबोध दिया।

इस प्रकार इन पवित्र नगरों में जैन मुनि, ससंघ विहार करते तथा अनेक जैन विद्वान एवं श्रावक-श्राविकाएं धार्मिक श्रद्धा के साथ आते तथा यहां आबाद हो जाते थे। इस प्रकार यह दुर्ग नगर धीरे-धीरे जैन धर्म का प्रमुख स्थल बन गया।

समकालीन साहित्य स्रोतों अनुसार यह नगर 11वीं-12वीं शताब्दी में शिक्षा एवं साहित्य रचना का एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा था। इस हेतु यहां के यदुवंशी शासकों ने विद्वानों एवं पंडितों को आश्रय प्रदान किया जिन्होंने अध्ययन-अध्यापन के साथ-साथ साहित्य रचना का भी कार्य किया। यहां के विद्वान यशोभद्राचार्य के पास आचार्य जिनपतिसूरि के शिष्य जिनपालगणी व धर्मशीलगणी संवत् 1188 में न्याय व तर्कशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी। इसी प्रकार खरतरगच्छआचार्य जिनदत्तसूरि व मणिधारी जिनचन्द्रसूरि आदि धर्माचार्यों ने धर्म की शिक्षा दी थी। यहां क्षत-विक्षत स्थिति में ताड़पत्रीय अभिलेख प्राप्त हुए हैं। जिनसे यहां शास्त्र भण्डार होने के प्रमाण मिलते हैं। यहां अध्ययन-अध्यापन के लिए अजयपाल ने अजय नरेंद्र विहार की स्थापना की थी। जिसमें निवास कर मुनि विनयचंद ने चूंदड़ी रास नामक अपभ्रंश साहित्य की रचना की थी। इस ग्रन्थ को जैन श्रावकों द्वारा जिनालय में गाया जाता था। इसी प्रकार मुनि विनयचंद ने त्रिभुवन गिरि की तलहटी में निवास कर 'निर्झर पंचमी' नामक कथा काव्य की रचना की जिसमें व्रतों का फल बतलाया गया है। इसी प्रकार "कल्याणक रास" नामक ग्रन्थ की रचना की थी जिसमें जैन तीर्थंकरों के पंच कल्याणकों की तिथियों का निर्देश किया गया है। मुनि उदयचन्द के शिष्य एवं मुनि विनयचन्द के गुरु मुनि बालचन्द थे, जिनका स्मारक (संवत् 1232) तिमनगढ़ में स्थित है। उन्होंने यहां निवास कर "निर्दुख सप्तमी कथा" एवं "दुद्धारस कथा" नामक ग्रन्थों की रचना की थी। इस नगर के सहवाल श्रेष्ठी के पुत्र पंडित लक्ष्मण ने 1196 ई. में गोरी के आक्रमण के बाद अन्यत्र निवास कर जिनदत्त चरित्र नामक अपभ्रंश कृति की रचना की थी। जिसमें कवि ने जिनदत्त नामक श्रेष्ठी का चरित्र चित्रण किया है।

दुर्ग के सात बारात नामक स्थल पर शोध कार्य के दौरान कटीली झाड़ियों के मध्य ये निषिदिका लेख मुझे मिले हैं। निषिदिका (स्मृति स्तम्भ) भारतीय संस्कृति में अन्तिम संस्कार के बाद स्मारक निर्मित किया जाता था। इसी प्रकार जैन धर्म में शिष्यों, श्रावक-श्राविकाओं ने उनके दिवंगत (संथारा/ संलेखना) संतों, आचार्यों की स्मृति में स्थापित की जाती थी। इन निषिदिकाओं पर अपने आराध्य तीर्थंकर की मूर्ति उत्कीर्ण कराकर लेख अंकित करवाये जाते थे। जिन पर मुनि का नाम, संघ का नाम, दीक्षित करने वाले श्रावक-श्राविकाओं, शिष्यों के नाम के साथ तिथि भी अंकित कराई जाती थी। ये निषिदिका लेख 11वीं-12वीं शताब्दी के हैं। उपलब्ध निषिदिकाओं में जैन धर्म के नौ संघीय मुनि देवसेन के शिष्य बालचन्द्र, ललितकीर्ति, विशालकीर्ति, अनन्तकीर्ति की है। ये सभी संवत् 1220 से 1248 के मध्य के है। इसके अलावा मुनिसंघ के आचार्य गुणचन्द्र, सागरसेन, कीर्तिसेन की पहचान हो चुकी है। ये निषिदिका लेख जैन धर्म की एक अमूल्य धरोहर है। भारत में सर्वाधिक निषिदिका श्रवण-बेलगोला में स्थित है। जबकि उत्तरी भारत में एवं विशेषकर राजस्थान में सर्वाधिक लगभग 35-40 निषिदिका तिमनगढ़ में स्थित है। इस पवित्र स्थान पर संथारा/संल्लेखना में देह त्यागना श्रेष्ठकर माना जाता था। इससे प्रतीत होता है कि यह दुर्ग 11वीं-12वीं शताब्दी में जैन धर्म का तीर्थ स्थल रहा था।

इन निषिदिका स्तम्भों पर स्थित लेखों में अनेक मुनियों, क्षुल्लिकाओं, श्रावक-श्राविकाओं एवं आर्यिकाओं का नामोल्लेख मिलता है जिनमें नाणिक श्री की शिष्या सरस्वती, क्षुल्लिका सलखनी,

श्राविका मीना, श्राविका जत्तु, श्राविका वीणा, श्राविका श्री श्राविका महामति, श्राविका जयश्री इसी प्रकार आर्या मदन श्री रामश्री, आर्यिका महाश्री, कमलश्री, माघश्री, नयश्री, संतेश्री, क्षुल्लिका जाल्ही, सकल कीर्ति की शिष्याएँ आर्या कुबलय सुन्दरी, आर्या अनन्तमति, आर्या शील सुन्दरी उनकी शिष्या वीरश्री, संयमश्री, विमलश्री, श्राविका साह, देवसेन के वंश में लाड़ बागड़ में उत्पन्न आर्यिका रूपिणी, आर्यिका विनयश्री, आर्यिका बाल, आर्यिका सलखणा, शिष्या अनन्तश्री आदि का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार मुनि कीर्तिसेन, देवसेन, संभवसेन, नारांघीय मुनि आनंदचन्द्र, ललितकीर्ति, यति महसेन, मुनि विशालकीर्ति, सत्यकीर्ति, अनन्तकीर्ति, चन्द्रकीर्ति, आचार्य विजयकीर्ति, मुनि सकलकीर्ति, विमलकीर्ति, विशालकीर्ति, मूल संघ के मुनि गुणचन्द, भट्टारक महेन्द्रकीर्ति, आचार्य ललितकीर्ति आदि मुनियों के नामोल्लेख मिलता है।

यह दुर्ग इतिहासकारों एवं पुराविशेषज्ञों की आंखों से सदा ओझल रहा तथा यह दुर्ग सघन डांग क्षेत्र में स्थित होने तथा दुर्ग की जर-जर हालत होने के कारण यह वीरान दुर्ग वर्षों से हिंसक जंगली जानवरों, दस्युओं व अपराधियों की शरण स्थली रहा था। इस कारण यहां किसी इतिहासकार व पुरातत्त्वविद् ने आने की हिम्मत नहीं की तथा अंग्रेज इतिहासकार व पुराविशेषज्ञ कनिंघम एवं कर्नल टॉड ने दुर्ग में प्रवेश करने का साहस नहीं किया, लेकिन वर्ष 2000 के लगभग जिला पुलिस अधीक्षक करौली, श्री एम.एन. दिनेश ने इस दुर्ग को मूर्ति तस्करों व दस्युओं से मुक्त करा दिया। इसी दौरान मुझे दुर्ग पर अनुसंधान करने का अवसर मिला और लगभग 4 वर्षों तक अनुसंधान कर प्राप्त नवीन तथ्यों को पत्रिकाओं एवं समाचार पत्रों के माध्यम से प्रकाश में लाता रहा। इस दौरान जैन मुनिवर मणिरत्नसागर जी महाराज साहब से मेरी भेंट जयपुर में हुई और मैंने उन्हें तिमनगढ़ तीर्थ के बारे में विस्तारपूर्वक बतलाया। जिससे महाराज साहब ने यहां विहार कर इस वीरान तीर्थ के पुनरुत्थान करने का संकल्प लिया। उन्होंने इस दुर्ग की तलहटी में वर्ष 2007 में भगवान पार्श्वनाथ के भव्य जिनालय का निर्माण करवाया तथा यहां एक अध्ययन केन्द्र की भी स्थापना की है। मुनिवर ने यह धर्मोपदेश देकर अनेक दस्युओं को अपराध मुक्त बनाया है। महाराज साहब द्वारा पुनः जैन तीर्थ बनाने का प्रयास तीव्र गति से किया जा रहा है।[10]

संदर्भ

1. कवि जदुनाथ, वृत विलास, ओझा निबन्ध संग्रह पृष्ठ 1 से 5, डॉ. दशरथ शर्मा - राजस्थान थ्रू द एजेज पेज 561।
2. इलियट एण्ड डाउसन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया पार्ट - 2 अनुवाद मथुरालाल शर्मा पृष्ठ 226 से 227।
3. पं. परमानन्द जैन शास्त्री - जैनग्रंथ प्रशस्ति संग्रह पृष्ठ 16।
4. डॉ. रामजीलाल कोली, तिमनगढ़ दुर्ग कला एवं सांस्कृतिक अध्ययन पृष्ठ 87।
5. पं. परमानन्द जैन शास्त्री - जैनग्रंथ प्रशस्ति संग्रह पृष्ठ 108 से 109।
6. अगरचन्द नाहटा एवं भवर लाल नाहटा, युग प्रधान जिनदत्तसूरि पृष्ठ 48।
7. के.सी. जैन, एन्शियन्ट सिटीज एण्ड टाउन्स ऑफ राजस्थान, जबलपुर पृष्ठ 135।
8. संलेखना/संथारा जैन धर्म में देह त्यागने की एक प्रक्रिया है जिसके तहत अन्न जल त्याग कर देह त्यागी जाती है
9. डॉ. रामजीलाल कोली, तिमनगढ़ दुर्ग कला एवं सांस्कृतिक अध्ययन पृष्ठ 87।
10. साक्षात्कार, जैन मुनि मणिरत्न सागर जी महाराज, तिमनगढ़ तीर्थ

ग्राम-पो. - गढ़मोरा,
जिला-करौली (राज.)
मो. 08890975446

कवि भूषण के काव्य में राष्ट्रीय स्वर

प्रो. गीता कपिल

हमारी संस्कृति में जन्मभूमि को स्वर्ग से महान तथा माता के समान आदरणीय और पूजनीय माना गया है। जहाँ माता के रूप में पृथ्वी अपने निवासियों का भरण-पोषण करती है वहीं पुत्र के रूप में मनुष्य का कर्तव्य हो जाता है कि वह प्रत्येक स्थिति में अपनी भूमि की रक्षा का दायित्व स्वीकार करे। इसी दायित्व भावना ने 'राष्ट्र' की भावना को जन्म दिया। अपने राष्ट्र व अपनी जन्मभूमि के प्रति अनुराग, अपनत्व व सम्मान का भाव ही मूलतः राष्ट्रीयता का द्योतक है।

वेदों में 'माता भूमि, पुत्रोहं पृथिव्याः' कहकर अपनी मातृभूमि के प्रति श्रद्धा, सम्मान और उत्तरदायित्व भाव व्यक्त किया गया है। इसके पश्चात् संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश साहित्य से होते हुए हिन्दी साहित्य में इसकी उत्कृष्ट अभिव्यक्ति परिलक्षित होती है। हिन्दी के आदिकालीन साहित्य में राष्ट्रीयता का भाव अपने राज्य तक ही सीमित व संकुचित था। आश्रयदाता के प्रति निष्ठा, उनकी प्रशस्ति व युद्ध क्षेत्र में उनकी वीरता व शौर्य के गीत इस काल के कवियों की कलम के प्रमुख अंग थे। युद्धों का काल होने के कारण उनकी वाणी में अनुपम व उत्साह है। इस काल का 'रासो' साहित्य इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। इसके पश्चात् भक्तिकाल में इस्लाम अपनी जड़ें जमा चुका था। चारों ओर निराशा व हताशा का वातावरण था। इस्लामी आक्रान्ता भारतीय संस्कृति को नष्ट कर जनता का मनोबल तोड़ रहे थे। फलतः इस काल के सन्तों व कवियों- कबीर, सूर, तुलसी, नानक, दादू, रैदास व जायसी-- ने अपनी वाणी से जनमानस की हताशा को दूर कर धार्मिक एकता व सहिष्णुता का प्रयास किया। इस काल का संपूर्ण साहित्य सांस्कृतिक भावना से अनुप्राणित है, किन्तु प्रत्यक्ष देशप्रेम संबंधी काव्य इस काल में नहीं मिलता।

हिन्दी साहित्य में रीतियुग चरम विलास, श्रृंगार व ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियों का काल है, अतः तद्युगीन काव्य की कसौटी के भी यही मानदण्ड थे, किन्तु घोर श्रृंगार व मूल्य ह्रास के इस युग में कुछ कवि ऐसे हुए जिन्होंने राष्ट्रीयता की प्रखर आलोकपूर्ण और तेजस्वी वाणी अपने काव्य में व्यक्त की। इन्होंने देश के स्वाभिमान को सर्वोपरि मानकर अत्याचारी शासकों के प्रति तीक्ष्ण वाणी में विरोध प्रदर्शन किया। भूषण इन कवियों में अग्रणी स्थान के अधिकारी हैं। उनके सम्बन्ध में उदय नारायण तिवारी का कथन है कि "हिन्दू संस्कृति और

हिन्दू राष्ट्र को लेकर गौरव और अभिमान की भावना उनके भीतर काम करती थी और इस अर्थ में भूषण का स्वर सच पूछिए तो उस काल के संपूर्ण हिन्दू राष्ट्र का स्वर है।"

भूषण रीतियुगीन श्रृंगारिक काव्य धारा के विपरीत वीरता व ओज धारा बहाने वाले कवि हैं। यद्यपि भूषण का वास्तविक नाम अभी तक ज्ञात नहीं, भूषण उनकी उपाधि है, जो उन्हें चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्रदेव से प्राप्त हुई। माना जाता है कि उन्होंने छः कृतियों--- शिवराज भूषण, शिवा बावनी, छत्रसाल दशक, भूषण उल्लास, दूषण उल्लास और भूषण हजारा की रचना की, जिनमें से प्रथम तीन ही प्राप्त हैं। इनमें से 'शिवराज भूषण' लक्षण ग्रंथ है, जिसमें उन्होंने अलंकारों के लक्षण देकर उदाहरण-स्वरूप शिवाजी की वीरता और शौर्य का तेजस्वी वाणी में चित्रण किया है।

भूषण का युग मुगलों के राजनीति पतन व ह्रास का काल है। जब औरंगजेब की संकीर्ण, असहिष्णु और कट्टर नीतियों से आम जनता लहूलुहान हो रही थी, चारों ओर असन्तोष व अराजकता का वातावरण था। यद्यपि अकबर, जहांगीर और शाहजहाँ के शासन काल में मुगल राज्य एक विशाल व वैभवशाली राज्य के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुका था। "उत्तर भारत से दक्षिण में अहमद नगर, बीजापुर, गोलकुण्डा तथा उत्तर पश्चिम में सिंध के लहरी बन्दरगाह से लेकर आसाम सिलहट और अफगान प्रदेश के, बिस्त के किले से लेकर दक्षिण के ओसा तक एकछत्र राज्य की स्थापना हो गई थी। किन्तु इसके पश्चात् शाहजहाँ के रुग्ण होने और उसकी मृत्यु की अफवाह फैलने के कारण 1658 ई. में उसके पुत्रों में सत्ता के लिए संघर्ष आरम्भ होते ही यह वैभवशाली साम्राज्य ह्रासोन्मुख हो गया। उसका ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह अपनी धार्मिक सहिष्णुता और उदारता के लिए जितना लोकप्रिय था, उतना ही छोटा औरंगजेब अपनी धार्मिक असहिष्णुता एवं अहम्मन्यता के कारण उतना ही अप्रिय था। दारा की हत्या कर औरंगजेब ने ज्यों ही शासन की बागडोर संभाली त्यों ही जागीरदारों, राजाओं और हिन्दुओं के धार्मिक उपद्रव आरम्भ हो गये।"

ऐसे प्रतिकूल समय में भूषण ने शिवाजी व छत्रसाल जैसे वीरों को नायक रूप में प्रस्तुत कर जनता में बल, स्फूर्ति, तेज और उत्साह के भाव पैदा किये। शुक्ल जी का कथन है कि "भूषण ने जिन दो नायकों की कृति को अपने वीर काव्य का विषय बनाया वे अन्याय दमन में तत्पर, हिन्दू धर्म के संरक्षक दो इतिहास प्रसिद्ध वीर थे। उनके प्रति भक्ति और सम्मान की प्रतिष्ठा हिन्दू जनता के हृदय में उस समय भी थी और आगे भी बराबर बनी रही या बढ़ती गयी। इसी से भूषण के वीर रस के उद्गार सारी जनता के हृदय की सम्पत्ति हुए।" भूषण ने अपनी राष्ट्रीयता की व्याख्या के लिए इन्हीं दो वीर पुरुषों की वीरता का चुनाव किया है। जनमानस में इनकी प्रतिष्ठा के लिए वे उन्हें विविध हिन्दू देवताओं का अवतार घोषित करते हैं। शिवाजी के सन्दर्भ में वे कहते हैं जिस प्रकार शेषनाग ने पृथ्वी का भार वहन किया है उसी प्रकार शिवाजी ने भी पृथ्वी की रक्षा का उत्तरदायित्व वहन किया है----

तेरे ही भुजानि पर भूतल को भार कहिबे को शेषनाग दिगनाग हिमाचल है।

तेरो अवतार जग-पोषण-भरनहार कछु करतार को न ता मधि अमल है।'

उनका मानना है कि जिस प्रकार विष्णु के राम व कृष्ण अवतारों का अवतरण पृथ्वी से दुष्टों, राक्षसों, खलों व अधर्म के विनाश हेतु हुआ उसी प्रकार शिवाजी भी पृथ्वी से अधर्म, अन्याय व प्रजा के शत्रुओं का दमन करने वाले हैं--

तेगहि के मेटै जौन राकस मरद जान्यौ सरजा सिवाजी राम ही को अवतारु है।'

इतना ही नहीं भूषण उन्हें जगदुद्धारे श्रीकृष्ण की भांति जग का पालन करने वाला है---

तुम सिवाराज बृजराज अवतार आज तुम ही जगत काज पोषत भरत है।'

भूषण के शिवाजी सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति के रक्षक हैं। भूषण बार-बार यह कहने में संकोच नहीं करते कि राम और कृष्ण ने जो कार्य धर्म और जन समुदाय की रक्षा के लिए किया शिवाजी भी ऐसे ही लोकहितकारी कार्यों में संलग्न हैं। राम और कृष्ण का संघर्ष रावण और कंस के अहंकार व अन्याय के विरुद्ध था तो शिवाजी औरंगजेब की अन्यायी नीतियों व अत्याचारों से मुक्ति के लिए संघर्षरत हैं--

तेरो करवाल भयौ दच्छिन को ढाल भयौ हिंदको भयौ काल तुरकान को।'

शिवाजी के शौर्य व साहस के साथ-साथ भूषण उनकी दूरदर्शिता व प्रत्युत्पन्नमति के भी विविध चित्र उकेरते हैं। शिवाजी औरंगजेब की प्रत्येक योजना को विफल ही नहीं करते वरन् साहसपूर्वक सामना करके विजय हासिल करते हैं। अफजल खां प्रकरण शिवाजी की इसी विशेषता का परिचायक है। अफजल खां प्रण करता है कि शिवाजी को पकड़कर औरंगजेब के सुपुर्द कर देगा और धोखे से शिवाजी को मारने की योजना बनाकर उन्हें सन्धि प्रस्ताव भेजता है। शिवाजी अपनी कूटनीति द्वारा अफजल खां की योजना का पता लगाकर साहस के साथ उसके ही खेमे में उसका ही वध कर देते हैं। भूषण इस प्रसंग की तुलना महाभारत के कीचक वध प्रसंग से करते हैं। जिस प्रकार भीम ने कीचक को द्वंद्व में मारा था, उसी प्रकार शिवाजी भी अफजल खां का अन्त करते हैं-

वहै है सिवाजी जिहि भीम ह्वै अकेले मारयौ, अफजल कीचकसौं कीच घमसान कै।'

देश के प्रति अनुराग रखने वाला कवि देश की दुरावस्था को देखकर चुप नहीं रह सकता। भूषण के युग में देशी रियासतों के राजपूत राजा चाटुकार और घोर विलासी थे। प्रजा के सुख-दुःख से बेखबर वे अपने विलास में लीन रहते। भूषण इस बात से क्षुब्ध हैं कि इन राजाओं ने देश के गौरव व सम्मान को दांव पर लगा दिया है। एक शिवाजी हैं, जिन्होंने देश के सम्मान की रक्षा की है--

कैतकी भी राना और बेना सब राजा भए ठौर-ठौर रस लेत नित यह काज है।'

भूषण इस बात से भी दुःखी हैं कि अधिकांश राजपूत राजाओं ने औरंगजेब की अधीनता स्वीकार कर ली है, क्योंकि उनमें व्यक्तिगत वीरता की कमी नहीं है-

अटल रहे हैं दिग अंतन के भूप धरि रैयत को रूप निज देस पेस करिकै।'

इन शासकों की आपसी फूट, द्वेष और निर्बलता के कारण देश की स्थिति ऐसी हुई है। ये राजपूत राजा वीरता और शौर्य में अद्वितीय हैं किन्तु इनमें दूरदर्शिता, संगठनशक्ति और एकता का अभाव है। भूषण शासकों की इन कमजोरियों से बेहद क्षुब्ध और चिन्तित हैं। वे कहते हैं-

आपस की फूट ही ते सारे हिन्दुवान टूटे,
टूटयौ कुल रावन अनीति अति करते।'

भूषण के नायक शिवाजी इन व्यक्तिगत संकीर्णताओं से परे धर्म और संस्कृति के रक्षक हैं। अपनी वीरता सकारात्मक उद्देश्यों से परिचालित है। राष्ट्र व राष्ट्रवासियों को अन्याय व पीड़ा से मुक्ति व उनके अक्षत आत्मसम्मान की रक्षा शिवाजी के जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य है। वस्तुतः उस समय हिन्दुओं को इस्लाम धर्म अपनाने के लिए विवश किया जा रहा था। धार्मिक स्थानों, तीर्थों को ध्वस्त कर उनके मनोबल को तोड़ने का प्रयास किया जा रहा था। "ऐसे समय में सारे आदर्शों को एक ओर रख कर्म में प्रवृत्त होने की आवश्यकता होती है। युग की इस मांग पर जो कर्म में प्रवृत्त होकर उन तीर्थ स्थानों की रक्षा करता है। वह जनता का श्रद्धा भाजन बनता है।" शिवाजी ने मथुरा, काशी, वृंदावन जैसे तीर्थों की रक्षा की और इन्हें ध्वस्त करने वाले आक्रान्ताओं को दण्ड दिया। इसीलिए वे जनता का सम्मान और विश्वास प्राप्त कर पाये। भूषण बहुत ही दुःखी स्वर में देश के तीर्थ स्थलों की दुर्दशा का चित्र खींचते हुए कहते हैं

"कासी हू की कला गई मथुरा मसीत भई
सिवाजी न होती तो सुनति होती सबकी।"

शिवाजी भारतीय संस्कृति के प्रतीक वेद व पुराणों के भी रक्षक हैं--

वेद राखे विदित पुरान परसिद्ध राखे राम नाम राख्यो अति रसना सुघर में।'

अपने इन्हीं महान उद्देश्यों के कारण शिवाजी

भूषण के नायक हैं जिनके माध्यम से उन्होंने राष्ट्र के प्रति अपने अनुराग की अभिव्यक्ति की।

वस्तुतः राष्ट्रीय साहित्य "युग की हलचलों को प्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत करता है। भूषण के काव्य में युग का जो प्रतिबिम्ब मिलता है, वह तत्कालीन समाज की विषम परिस्थितियों का ज्ञान कराता है।"

भूषण तद्युगीन शासक औरंगजेब के अत्याचारों व अनीतियों से भली-भाँति परिचित हैं। उसके अनीतिपूर्ण शासन की तुलना दुर्योधन से करते हुए वे कहते हैं

दारुन दुगुन दुरजोधन तें अवरंग भूषण भनत जग राख्यो छलु मढ़िकै।

यद्यपि शिवाजी की प्रशंसा व औरंगजेब की निंदा के कारण भूषण को जातिगत भेदभाव रखने वाला कवि माना गया है किन्तु आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का कथन है कि "भूषण के उद्गार मुसलमानी धर्म के विरोध में नहीं हैं, अत्याचार और अन्याय के विरोध में हैं। वह भी विशेष रूप से औरंगजेब या उसके सूबेदारों के अनाचारों-- अतिचारों के विरोध में।" मिश्र जी का कथन अक्षरशः सत्य है, यदि भूषण जातीय भेदभाव की मनोवृत्ति से ग्रसित होते तो वे औरंगजेब के पाइ दादा व उनके पूर्वजों की प्रशंसा न करते। भूषण मुख्यतः औरंगजेब की दमनकारी नीतियों के विरोधी हैं। वे कहते हैं--

किबले के ठौर बाप बादशाह साहजहाँ ताको कैद कियो मानो मक्के आगि लाई है।

इस प्रकार भूषण ने शिवाजी को एक लोकप्रिय, साहसी देश व प्रजाहितैषी शासक के रूप में प्रस्तुत कर अपने राष्ट्रीय उद्गार अभिव्यक्त किए हैं। वस्तुतः "शिवाजी को उत्तर भारत में जो सम्मान प्राप्त हुआ उसका बहुत बड़ा श्रेय भूषण कवि को है। शिवाजी को तत्कालीन जनता ने अखिल भारतीय नेता स्वीकार किया है। मुगलों के शक्तिशाली विरोधी के रूप में शिवाजी का उल्लेख भूषण के काव्य में है और यह उल्लेख पूरी ओजस्वी वाणी में है और इस कारण मुगलों के विरुद्ध भाव रखने वाली जनता की भावनाओं का पोषण अपने-अपने मान्य परम्परागत मूल्यों के प्रति सचेत रहने में हुआ है। इस नाते भूषण को उस युग का राष्ट्रीय कवि घोषित किया गया है।"

संदर्भ

1. वीर काव्य-- उदय नारायण तिवारी, भारती भण्डार, इलाहाबाद, पृ. 99
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास-- सं. डॉ. नगेन्द्र, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, सं. 2001, पृ. 282।
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास-- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, ए टू जेड पब्लिकेशन, इलाहाबाद, संस्करण 2001, पृ. 178।
1. भूषण ग्रंथावली--आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी प्रकाशन, दिल्ली संस्करण--2004, पद 81।
2. वही, पद 148।
3. वही, पद 70।
4. वही, पद 68।
5. वही, पद 315।
1. भूषण ग्रंथावली-- आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पद 440।
2. वही, पद 120।
3. वही, पद 477।
4. भूषण और उनका काव्य-- डॉ. राजमल बोरा, साहित्य रत्नाकर कानपुर, द्वितीय संस्करण, पृ. 192।
5. भूषण ग्रंथावली-- आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पद 447।
1. वही, पद 420, अथवा 'राज--लाज राजत आज है महाराज श्री सिवराज में।' पद 216।
2. भूषण और उनका काव्य-- डॉ. राजमल बोरा, पृ. 112।
3. भूषण ग्रंथावली-- आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पद 135।
4. वही, भूमिका से, पृ., 33-34।
5. वही, पद 541।
6. भूषण और उनका काव्य-- डॉ. राजमल बोरा, पृ. 203।

हिन्दी विभाग

513, रामानुज आवास, वनस्थली विद्यापीठ (राज), फोन-9460233293

देश-काल-पात्र के अनुसार परम्परा और नियम

हिन्दू धर्म मानता है कि यह सम्पूर्ण चराचर जगत न तो एकरूप है और न अविचल है। देश काल और पात्र के अनुसार यह सृष्टि अपनी स्थिरता और सनातनता और एकरूपता बदलती रहती है। कहा गया है कि यह सृष्टि अनित्य है। इसी कारण नियम, उपनियम, पद्धति और परम्परा भी स्थिर या नित्य नहीं हैं। कालान्तर में इनमें देशानुकूल परिवर्तन होता रहता है। यह इस बात से भी प्रमाणित होता है कि विभिन्न कालों में विष्णु ने अलग-अलग उद्देश्य से अलग-अलग अवतार लिए हैं। शिव ने इस सृष्टि को नष्ट कर दिया था। विष्णु शेषनाग पर शयन कर रहे थे तब ब्रह्मा ने सृष्टि का पुनः निर्माण किया। विष्णु जागे और उन्होंने पशु से लेकर मानव रूप में नौ अवतार लिये हैं। उन्हें एक बार फिर आना है। इन अवतारों में मत्स्य, कूर्म, वाराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम, जगन्नाथ, ये अवतार हो चुके हैं। कल्कि अवतार अभी बाकी है। श्री मद् भागवत महापुराण में प्रसंग से आया है कि बड़े जीव छोटे जीव को अपना आहार बना लेते हैं:--

अहस्तानि सहस्तानामपदानि चतुष्पदाम्।

फल्गूनि तत्र महतां जीवो जीवस्य जीवनम्।। (1,13,46)

हाथ वाले बिना हाथ वाले को, चार पैर वाले पशु बिना पैर वालों को, और बड़े जीव छोटे जीवों को आहार बनाते हैं। यह जंगल न्याय है। इसे ही मत्स्य न्याय कहते हैं। अतः यह पंच भौतिक शरीर काल, कर्म और गुणों के अधीन है।

तीन हजार साल पहले वर्णित शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि ईश्वर ने धर्म को उत्तर दिशा में स्थापित किया है। यह स्थिरता का प्रतीक है क्योंकि उस दिशा में अधिकतम चुम्बकीय शक्ति है। वही धर्म है जो जीवन और स्थायित्व का प्रतीक है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि धर्म के अन्तर्गत रीति-नीति समयानुकूल, स्थान के अनुकूल और व्यक्ति परक होनी चाहिए। रावण ने सीता का अपहरण करके अधर्म किया, दुर्योधन ने पाण्डवों को उनका न्यायोचित स्थान नहीं दिया, इसी कारण उन्हें दण्ड भोगना पड़ा।

देश-काल पात्र के अनुसार रीति-नीति स्थापित करने के लिए हमें अपनी चेतना का विस्तार करना होगा। यह जंगल का न्याय है कि बड़ा पशु छोटे पशु को अपना आहार बनाता है। मानव जगत में इस जंगल न्याय का निषेध है, जहाँ भूख, प्यास, भय के बिना कोई स्वजीव को और उसी दृष्टि से परजीव को देखता है, तो यह श्रेष्ठता का प्रमाण है।

मनु ने जिस स्तरीकरण के अनुसार चतुर्वर्ण की बात की है वह गीता में समता पर आधारित है:--

विद्याविनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।(5/18)

आत्मबोध और अप्रतिमा गुणों से सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल में पण्डितजन समभाव देखते हैं।

यह मानवता से भरा सन्देश है। चतुर्वर्ण का तात्पर्य यह नहीं है कि शूद्र निम्नतर है या वे सेवक मात्र हैं।

जो आत्मा सब में निवास करती है--वह भौतिक, मनोवैज्ञानिक और पद पदवी के प्रभाव से परे है। यह समदृष्टि की द्योतक है। आत्मज्ञान होने पर हम अपने-पराये, छोटे-बड़े, जैसे दुर्विभाजकों में चीजों को नहीं देखते। नैतिकता हमारे सज्ञान का विस्तार है। जिसका संज्ञान जितना अधिक होगा, वह नैतिकता के पैमाने पर उतना ही ऊँचा होगा। राजा जनक राज-ऋषि थे।

आज हमारे से ज्ञान (consciousness) और नैतिकता (morality) में विभाजन रेखायें आ गई हैं। इसी से समाज में विसंगति देखने को मिलती है।

संज्ञान मात्र ध्यान लगाकर आँखें मूँद लेने में नहीं है। वह दर्शन (contemplation) में है। हमारे सारे क्रिया-कलाप कर्म आधारित हैं। दुर्भाग्य या आपदा के साथ याद दुर्भाग्य या आपदा ही आती है। कारण और उसके परिणाम में परस्पर सम्बन्ध है। शूर्पणखा की नाक काटने के बाद राम और सीता निर्बाध जीवन नहीं जी पाये। कृष्ण ने धर्म स्थापित किया पर गान्धारी के अभिशाप से बच नहीं पाये।

धर्म मात्र अच्छे और बुरे तक सीमित नहीं है। वह सूक्ष्म संज्ञान और नैतिकता पर भी आधारित है जो देश, काल और पात्र के समयानुसार निर्धारित होती है।

डॉ. लक्ष्मी नारायण मित्तल
एच 902, ओल्डहाउसिंग बोर्ड कॉलोनी
मुरैना-47600 (म.प्र.)

शाहजहाँ की कैद का कारण ताजमहल?

यदि कहा जाये कि शाहजहाँ के अन्तिम दिन कैद में व्यतीत होने का एक बड़ा कारण उसकी पत्नी मुमताज का मकबरा-ताजमहल है तो सुनने वाला चौंक पड़ेगा और बात उसे असंगत लगेगी परन्तु यदि इतिहास की बिखरी कड़ियों को ठीक से जोड़ा जाये तो तो कुछ ऐसा ही लगता है।

शाहजहाँ का अपने बड़े बेटे दारा शिकोह के प्रति अत्यधिक स्नेह था। उसने दारा के पक्ष में अपनी वसीयत तक लिखवा दी थी। दारा में धार्मिक कट्टरता बिल्कुल नहीं थी। उसने उपनिषद् आदि कई हिन्दू धर्म से सम्बन्धित ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद भी किया था। उसकी अंगूठी में 'प्रभु' शब्द उकेरा हुआ था। इन्हीं कारणों से कट्टर-पंथी, मुसलमान उससे खुश नहीं थे। औरंगजेब तो अपने इस बड़े भाई को 'काफिर' की संज्ञा देता था। दूसरी ओर स्वयं औरंगजेब धार्मिक मामलों में बेहद कठोर था। वह पाँचों वक्त का नमाजी था। बलख के मैदान में उसने घनघोर युद्ध के मध्य घोड़े से उतरकर नमाज पढ़ी थी।

सितम्बर 1657 में जब शाहजहाँ बीमार पड़ा तो उसके सभी पुत्र उत्तराधिकार पाने के लिये संघर्षरत होने हेतु तत्पर हो गये। मुख्य संघर्ष दारा व औरंगजेब के मध्य था। इस युद्ध में आमेर के हिन्दू राजा जयसिंह की सहानुभूति प्रारम्भ से ही हिन्दू विरोधी औरंगजेब के साथ थी। हालांकि जयसिंह ने दारा की ओर से उसके पुत्र सुलेमान शिकोह के साथ बनारस के पास शुजा को युद्ध में पराजित किया था। फिर भी बनारस से आगरा लौटते हुये उसने अपने मित्र व सेना के दूसरे सेनापति दिलेर खाँ से सलाह करने के बाद ऐसा माहौल बनाया कि कि विजयी सेना सुलेमान शिकोह का साथ छोड़ गयी और फिर स्वयं राजा जयसिंह ने जाकर शाहजादे को समझाया कि अब सेना आपके साथ नहीं है। आपको अपने सरदार दिलेर खाँ, दाऊद खाँ पर विश्वास नहीं करना चाहिए। यदि आपने अपने पिता (दारा शिकोह) की मदद करने की कोशिश की तो आप दुर्दशा में पड़ जायेंगे। बेहतर होगा कि आप गढ़वाल की ओर भाग जायें।

सुलेमान शिकोह वीर व साहसी होने के बावजूद दुनियादारी से अनभिज्ञ था। जयसिंह की सलाह मानकर वह श्रीनगर (गढ़वाल) के राजा की शरण में पहुँच गया। जाने से पहले जयसिंह व दिलेर खाँ ने उसका बहुत सा माल रख लिया। इस तरह दारा अपने पुत्र की सहायता से वंचित हो गया। एक प्रकार से उसका एक दाहिना हाथ ही टूट गया।

बाद में जयसिंह ने ही श्रीनगर के राजा को इस आशय का पत्र भेजा कि यदि आप सुलेमान शिकोह को पकड़ कर औरंगजेब के पास भेज देंगे तो आपको बड़े-बड़े इनाम मिलेंगे वरना आप बहुत हानि उठायेंगे। राजा शुरू में नहीं माना परन्तु बाद में उसने सुलेमान शिकोह को औरंगजेब के लोगों के हाथ में सौंप दिया। औरंगजेब ने सुलेमान शिकोह को ग्वालियर के किले में बन्दी रखने का आदेश दिया और वहाँ उसे पोस्त का पानी (अफीम मिश्रित) पिलाया जाने लगा, जिससे कुछ ही समय में उस की मृत्यु हो गई।

खजुआ के युद्ध में औरंगजेब की सेना में सम्मिलित राजा जसवन्त सिंह ने मुकाबले पर खड़े शाहजादे शुजा से अन्दरूनी गठबन्धन कर रखा था। उसने मध्य रात्रि को औरंगजेब की सेना, खजाने व पड़ाव को लूटकर मारवाड़ की ओर प्रस्थान कर दिया जिससे औरंगजेब अत्यधिक क्रोधित हुआ। उधर भागते हुए दारा ने जब जसवन्त सिंह से सहायता माँगी तो पासा पलटने की आशंका से जय सिंह पुनः बीच में आ गया। उसने जसवन्त सिंह से दारा की मदद न करने को कहा और वचन दिया कि इसके बदले में वह उसे औरंगजेब से गुजरात की सूबेदारी दिलवा देगा। साथ ही औरंगजेब जसवन्त सिंह से वह धन भी नहीं माँगेगा जो उसने खजुआ के युद्ध में लूट लिया था। जसवन्त सिंह प्रलोभन में आ गया, उसने दारा की मदद देने से इन्कार कर दिया। इसके बाद तो दारा का पतन पूर्णतः सुनिश्चित हो गया।

इस प्रकार जयसिंह ने उत्तराधिकार के युद्ध में कदम-कदम पर शाहजहाँ और उसके प्रिय पात्र दारा का विरोध किया। जयसिंह ने शुरू में गुप्त रूप से तथा बाद में खुलेआम औरंगजेब का साथ दिया।

अब प्रश्न उठता है कि जयसिंह ने इस संघर्ष में हिन्दू विरोधी औरंगजेब का साथ क्यों दिया? जयसिंह का दारा से कोई व्यक्तिगत विरोध नहीं था। वह तो शाहजहाँ द्वारा बेगम मुमताज के मकबरे हेतु अपने भव्य महल (जिसे आज कल ताजमहल कहा जाता है) हस्तगत कर लिये जाने के कारण भारी रुष्ट था और इसमें गहरी रंजिश मानता था। शाहजहाँ को ताजमहल में कुरान की आयतें उसके द्वार पर उत्कीर्ण करवाने के हेतु संगमरमर की जरूरत थी। उसने इस संबंध में जो फरमान जयसिंह को भेजे थे, उनमें धमकी थी। इसने जले पर नमक का काम किया। जयसिंह की मदद व सांठ-गांठ के कारण ही औरंगजेब गद्दी पर बैठा तथा शाहजहाँ को बन्दी बनना पड़ा। इस प्रकार राजा जयसिंह ने अपने महल छीने जाने का शाहजहाँ से बदला ले लिया।

ये बात अलग है कि राजा जयसिंह की इस प्रतिशोध की भावना से हिन्दू धर्म को भयंकर क्षति पहुंची।

राजकिशोर शर्मा 'राजे'
136, नारायण विहार, सिकन्दरा,
आगरा--282007(उ.प्र.),
मो.-9808789759

खुश रहने का नुस्खा

हमारी प्रसन्नता हेतु चार हारमोन आवश्यक होते हैं।

1. ऐन्डोर्फिन्स: जब हम व्यायाम करते हैं तब

शरीर से एन्डॉर्फिन्स का स्राव होता है, जिसके कारण हम व्यायाम करते हुए प्रसन्न हो जाते हैं। ठहाके मारकर हंसने से भी इस हारमोन की उत्पत्ति होती है। हमें दैनिक 30 मिनट व्यायाम करना चाहिए एवं हसाने वाली फिल्म/सीरियल/कॉमिक इत्यादि देखना चाहिए।

2.डोपामाइन: जब जीवन के सफर में हम छोटी-छोटी ही सही, कामयाबी पा लेते हैं तब विभिन्न स्तर पर डोपामाइन का स्राव होता है, इसी प्रकार घर अथवा कार्यालय में जब हमें सराहना मिलती है, उस समय भी यह हारमोन निकलता है और हमें अच्छा लगता है। गृहणियों के अप्रसन्न रहने का एक कारण यह भी है कि उनके द्वारा किये गये कार्यों की सराहना नहीं की जाती है। जब हम अपने लिये कार अथवा नया घर, सामान खरीदते हैं, हमारी प्रसन्नता का कारण यह हारमोन ही है।

3. सेरोटोनिन: जब हम कोई कार्य उस प्रकार का करते हैं, जिससे किसी का भला/लाभ होता है, प्रकृति अथवा समाज हेतु कुछ अच्छा करते हैं, हम प्रसन्न हो जाते हैं, तब इसी हारमोन का स्राव होता है।

4. ऑक्सीटोसिन: जब हम प्रेमवश किसी के गले लगाते हैं, हाथ मिलाते हैं अथवा उसके कन्धों को अपनी बाहों से घेरते हैं, उस समय विभिन्न मात्रा में हारमोन ऑक्सीटोसिन का स्राव होता है। इस प्रकार हम अपनी समस्याओं एवं चुनौतियों से भली-भाँति निपट सकते हैं।

बच्चों के हित में हमें यह करना चाहिए--

1. उन्हें मैदान (playground) पर खेलने हेतु प्रेरित करना।

2. उनको हर छोटी एवं बड़ी सफलता पर बड़ाई (praise) करें।

3. उनमें दूसरों के साथ अपनी वस्तुओं को साझा करने का गुण उत्पन्न करें।

4. अपने बच्चों को अपनी बाँहों में भर के गले लगायें।

जितेन्द्रनाथ जोहरी
ई-234, सेक्टर-14, हिरणमगरी
उदयपुर-313002 (राजस्थान)
मो. 8003188087

संयम

संयम का मतलब होता है व्रत नियम में बंध जाना। हरेक क्षेत्र में संयम की बड़ी आवश्यकता है। जब तक बंधन (संयम) नहीं है, तब तक मुक्त नहीं है। जिस प्रकार ऊंट के लिए नकेल, घोड़ों के लिए लगाम, मोटर के लिए ब्रेक की आवश्यकता है, उसी प्रकार मनुष्य के लिए ब्रेक, बंधन यानी संयम की आवश्यकता है। मनुष्य पर ब्रेक नहीं हो तो उससे ज्यादा खतरा और किसी से नहीं होता। जब संयम नहीं है और मस्तिष्क में विकार आ जाता है, तब वह किसी को सुखी नहीं बना सकता। हम दूसरे पदार्थों को कंट्रोल में रख कर व्यवस्था देख रहे हैं, परंतु अपने पर कंट्रोल नहीं चाहते। समीचीन रूप से जो चलना, जानना और आचरण करना है उसका नाम भी संयम है। संयम का अर्थ है प्राण और इंद्रियों को कंट्रोल में रखना। दया का मतलब प्राणी संयम और दमन का मतलब इंद्रिय संयम है। जब ज्ञान धारा जानने की शक्ति को बिना कंट्रोल के छोड़ देते हैं तभी दुख का अनुभव होता है। उपवास करना, या रस छोड़ना आदि ही सिर्फ संयम नहीं है।

- आचार्य विद्यासागर

प्रतिस्वर

वैचारिकी का (मार्च-अप्रेल/मई-जून 2020) संयुक्तांक मिला। 'विचार' में सम्पादकीय संदेश के रूप में डॉ विट्ठलदास मूंधड़ा के सबसे पहले अवगत हुआ तो कोरोना वायरस के प्रकोप में प्रतिकूल परिस्थितियों से लड़ना और सामंजस्य रखना हमारी बाध्यता ही नहीं बुद्धिमानी भी है। शायद यह सच इस धरती पर परंपरा बनकर पसरा गया है, हरेक एक शताब्दी के अंतराल में पर्यावरण के प्रदूषण जन-जीवन को मुक्त करने तथा वन-वनस्पति संरक्षण के लिए महामारी विभिन्न रूप में आती है और मानव-समाज अपनी क्षमता तथा ज्ञान-बुद्धि के बल पर लड़कर खुद को बचाना आया है और ऐसा ही संग्राम जारी भी है। उम्मीद है बहुत जल्दी शीघ्र ही वैक्सीन जीवन की रक्षक सबको उपलब्ध हो जाएगा। महामारी और लॉकडाउन के कारण संसार की सूरत बदलती जा रही है, लोगों की जीवन-शैली भी बदल रही है, व्यवहार बदल रहा है, और वाणिज्य और व्यापार के तौर तरीके भी बदल रहे हैं तो स्वभावतः प्रकाशन के क्षेत्र में परिवर्तन पाँव पसारेगा ही। शिक्षा, व्यापार, यात्रा, चिकित्सा तथा अन्य कई क्षेत्र में परोक्षस्थानिक (वर्चुअल) अथवा ऑनलाइन व्यवस्था को अनुसरण करने की विवशता आई है

इस अंक में ''हिन्दी काव्य में गंगा का पौराणिक व आध्यात्मिक स्वरूप' लेख में डॉ. गुंजन जोशी ने गंगा धार्मिक, साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा अन्य कई कल्याणकारी पहलुओं को सोदाहरण व्याख्या करके पाठकों को तृप्त किया है गंगा के शब्द-जल संदेश से।'

विज्ञान जगत में महिलाओं में डॉ. विद्या केशव चिटको ने ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में महिलाओं के कृतित्व का परिचय देकर महिला शक्ति के रूप में दुर्गा-काली लक्ष्मी-सरस्वती के अस्तित्व की सार्थकता भी बताई है। डॉ. गोपाल शर्मा ने ऋग्वेद, बाइबिल और कुरान में सृष्टि-प्रक्रिया एवं सृष्टि-पूर्व की स्थिति के विषय में गहन और तथ्यपरक जानकारियाँ दी हैं। इस दिशा में और भी शोधमूलक कार्य लेखन जरूरी है ताकि सबको सही ज्ञान हो और भ्रम फैलाने वाली शक्ति क्षीण हो। और सभी रचनाएँ स्तरीय और सराहनीय हैं।

मिर्जा खड़का छुकमेली,
आशा छहकालय, दुर्गागढ़ी, प्रधाननगर,
दार्जिलिंग-734003, मो. 9749052657

वैचारिकी के दोनों अंक यथा समय प्राप्त हो गए थे। "वैचारिकी" नामानुसार गुणसंपन्न है। अभिव्यक्ति और विचार दोनों ही विशेष बढ़े जायेंगे। संपादकीय से मैंने अंकों को पढ़ना शुरू किया और मन प्रसन्न हो गया। जनवरी फरवरी अंक में भारत की अभिवादन संस्कृति प्राचीन काल से आजतक विस्तार से विवेचन महत्वपूर्ण है। अष्टांग प्रणाम और पंचांग प्रणाम के बारे में इतने विस्तार से इस आलेख द्वारा जानकारी मिली लेखक के प्रति धन्यवाद! आज की युवा पीढ़ी "हाय हैलो" में ही सीमित रहने वर्ग को इस लेख की प्रतियाँ बाँटी जाय तो युवा पीढ़ी अपनी भारतीय संस्कृति को समझ पाएँगे, जिसकी आज आवश्यकता है।

संयुक्तांक मार्च अप्रैल अंक में गंगा के पौराणिक और आध्यात्मिक स्वरूप आलेख उनके दीर्घ

अनुभव अध्ययन का परिचायक है। गंगा में मन प्राणों में बसी हुई है। गंगातट पर काशी मेरी जन्मभूमि है चौबीस वर्ष से अपने घर की खिड़की से विशाल रूप में गंगा मैया का निहारती रहती थी। विवाहोपरान्त नासिक में आ गई यहाँ गोदावरी नदी है जिसे दक्षिण गंगा कहा जाता है इसके दर्शन तो करती हूँ सुख भी होता है पर तृप्ति तो गंगा दर्शन से ही। गंगा तो गंगा ही है।

नारी विमर्श चिंतन में कई अनछुए पहलुओं की ओर संकेत मात्र कर दिया गया है। स्वतन्त्र अवेक्षित है।

डॉ. भगवानदास जी तो जाने-माने सिद्धहस्त अनुभवी गजलकार हैं अभ्यास वृत्ति के हैं उनका तुलनात्मक अध्ययन महत्त्वपूर्ण है।

इतिहास आजकल बाध्य समझा जाने लगा है हमारा इतिहास समृद्ध रहा है और उसके द्वारा हम आज विश्व में अपनी पहचान बनाये हुए हैं, उसका महत्त्व निरूपण यह लेख है। लेख पढ़ते समय ही मेरे मन में अनेक विचारों ने घर कर लिया था उसकी चर्चा फिर कभी किसी लेख में करूँगी।

महिलाओं के कई प्रश्न और समस्याएँ हैं जिन पर समय-समय पर महिलाओं ने सुभद्रा कुमारी चौहान, महादेवी वर्मा, गौरा पंत शिवानी, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, कृष्णा अग्निहोत्री, मन्नू भंडारी और शताधिक महिलाओं ने विविध प्रकार से ध्यान आकृष्ट करता मौलिक लेखन किया है।

सर्वानुक्रम के उपरान्त कुछ प्रश्नों और उनके समाधान के लिए प्रयत्नशील हूँ।

विद्या केशव चिटको
3, समर्थ नगर कॉलोनी लक्ष्मी नगर,
नासिक-422005, मो. 9527713387

वैचारिकी के जनवरी-फरवरी अंक में डॉ. आनन्द शर्मा का लेख पढ़ा। इस लेख के सम्बन्ध में कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।

(1) ताजमहल पहले मानसिंह का प्रासाद था और बाद में उनके पौत्र जयसिंह से शाहजहाँ ने चार हवेलियाँ देकर हस्तगत किया, इतनी बात प्रमाणपुष्ट है और सर्वमान्य है।

(2) प्रासाद का सौन्दर्य शाहजहाँ की ईर्ष्या जगाता था, इसलिए छल कपट से उसने जयसिंह से माँग लिया इसे मैं पूर्ण सत्य नहीं मानता। मेरी धारणा तो यह है कि यमुना तट पर स्थित होने से उन दिनों इसका कुछ सामाजिक महत्त्व भी था जिसमें शाहजहाँ को लोभ हुआ होगा।

(3) ताजमहल का नाम पहले कभी 'तेजो महालय' था। यह बात पुरुषोत्तम नागेश ओक से पहले किसी ने नहीं कही। ओक महाशय ने संस्कृत, हिन्दी, फारसी या अन्य किसी भाषा के किसी ग्रन्थ में या किसी दस्तावेज में यह नाम पाया होता तो वे अवश्य ही इसका उल्लेख करते। अतः मेरा मत है कि यह ओक साहब की पूर्व कल्पना का फल मात्र है।

(4) यह भी ओक साहब की कल्पना की है उपज है कि यहाँ कोई शिवमन्दिर था जो बारहवीं शताब्दी में किसी ने बनवाया था। किसी भी ग्रन्थ, दस्तावेज या अन्य साक्ष्य से इसकी पुष्टि नहीं होती। ओक साहब के मत का यह अंश इतिहास नहीं, एक प्रकार की राजनीति की देन है। इसके परिणाम स्पष्ट होने लगे हैं। सन् 2020 में कुछ 'भक्तों' ने ताजमहल में प्रवेश कर शिवपूजन किया जो कि एक महानाटक का प्रथम अंक है। द्वितीय अंक में ताजमहल को तोड़ डाला जायेगा और तृतीय अंक में वहाँ शिवमन्दिर बनेगा।

(5) यदि वहाँ बारहवीं शताब्दी से शिवमन्दिर रहा होता तो क्षत्रियप्राण मानसिंह या उनके पूर्वज वहाँ अपना भवन कैसे बना सकते थे? जीवन के गत पचासी वर्षों में मैंने तो कहीं देखा है कि हिन्दू घरों में या एक कक्ष में आराध्य देवता की मूर्ति या उनका प्रतीक स्थापित रहता और वहाँ पूजा-पाठ होता है या फिर धनी-मानी लोग घर से संलग्न स्थान में ही एक मन्दिर बनवाते हैं परन्तु किसी भी हिन्दू ने कभी किसी मन्दिर को अपना वासभवन बना लिया हो ऐसा न तो देखा, न सुना। यदि कहूँ कि बारहवीं शताब्दी से मानसिंह और उसके पौत्र जयसिंह के समय तक भी हिन्दू समाज की रीति नहीं थी तो आशा करता हूँ कि पाठक इससे सहमत होंगे।

(6) शायद यह तर्क किया जायेगा कि बाबर ने पहले ही मन्दिर को वासभवन में परिणत कर दिया था अतः उस पर अधिकार पाने के बाद मानसिंह या उसके पूर्वजों को इसमें संकोच नहीं हुआ। इस प्रकार के तर्क का अर्थ यह है कि बाबर ने जो कर डाला वह हिन्दुओं के लिए अभिप्रेत हो गया। यदि ऐसा ही है तो बाबरी मस्जिद तोड़कर उसके स्थान पर राममन्दिर बनाने का प्रश्न ही न उठता।

(7) शेरशाह सूरी के वंशधरों के अन्तिम दिन बड़े अशान्तिपूर्ण थे। उन्हीं दिनों हेमू ने विक्रमादित्य नाम धारण कर सत्ता हस्तगत करने का प्रयास किया जिसे डॉ. रमेशचन्द्र मजूमदार हिन्दू राज्य स्थापित करने की असफल चेष्टा कहा है। उन्हीं दिनों मानसिंह या उनके पिता अथवा पितामह ने उस स्थान या भवन को प्राप्त कर लिया जो बाद में ताजमहल कहलाया। यहाँ कोई मन्दिर निःसन्देह नहीं था अतः मानसिंह को यहाँ अपना वासस्थान बनाने में कोई खटका नहीं लगा। सत्य तो यही है, आगे 'भक्तों' की मर्जी।

उपेन्द्र नाथ राय
ग्राम डाक-संकोसी, जिला—जलपाईगुड़ी, - 735227

भारतीय विद्या मन्दिर पावन साहित्यिक-संस्थान, साहित्य-सेवकों के लिए कितना दुर्लभ अवदान अपने त्रैमासिक 'वैचारिकी' के माध्यम से दे रहा है, यह इसके अंकों को देखने से स्पष्ट हो जाता है। सम्पादकीय न केवल आपके वैदुष्य का परिचायक है बल्कि परिप्रेक्ष्यानुसार प्रभूत प्रासंगिक भी लगा।

पत्रिका की सामग्री का उत्कृष्ट स्तर, साथ-ही उस सामग्री का वैविध्य सर्वात्मना प्रशंसनीय है। विवेचनात्मक साहित्य समीक्षा की दृष्टि खींचने वाले आलेख, अभिमतों एवं पाठकों के पत्रों का स्तम्भ इसे व्यापक फलक पर फैला साम्प्रतिक वैविध्य, इसे नए शिखर स्तर की विशिष्टता प्रदान करता है। यह कितनी लगन, कितना अध्यवसाय और किस प्रतिभा अंतर्दृष्टि की परिणति होती है, यह सुधी साहित्य मनीषी ही समझ सकते हैं। कुल मिलाकर यह अंक छपाई-सफाई, निर्दोष मुद्रण, अच्छे किस्म के कागज आदि सभी दृष्टियों से पठनीय वरन् संग्रहणीय भी है। ऐसी उत्तम प्रस्तुति के लिए आपको बहुत-बहुत बधाई मेरी ओर से।

सीताराम पाण्डेय,
रामबाग चौरी रोड,
मुजफ्फरपुर-842002 (बिहार)

श्रद्धेय डॉ. मूंधड़ा जी, आपके विलक्षण सम्पादकत्व में प्रकाशित त्रैमासिकी वैचारिकी का संयुक्त अंक (मार्च-जून 2020), यथा समय मिला था। आकर्षक सामग्री वैविध्य रूप में एवं पर्याप्त मात्रा में सहेजी गई है। ई. पत्रिका के बाद एक लंबे अंतराल के बाद प्रत्यक्ष रूप में वैचारिकी के दर्शन कर हृदय का आनंद विभोर होना स्वाभाविक है।

आपका 'विचार' शीर्षक संपादकीय भी पठनीय व चिंतनीय है। सन 1918 में भारत में फैली स्पेनिश फ्लू नामक महामारी के दुष्परिणामों का हृदय विदारक चित्र पढ़ा/देखा। इसी संदर्भ में आपने प्रवर्तमान वैश्विक महामारी कोरोना और उसकी त्रासदी से आक्रांत विश्व भर की हुकूमतों की चिंता का भी स्वाभाविक निरूपण किया है। पुनश्च, आपने देशवासियों को धैर्य पूर्वक एवं सावधानीपूर्वक इन दिनों का सामना करने के लिए संप्रेरित/आश्वस्त किया है।

तदुपरांत प्रस्तुत अंक में शोध परक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, पौराणिक एवं साहित्यिक आलेख भी प्रकाशित किए हैं। लिहाजा पूरा अंक 'भिन्न रुचिर्हि लोकः' के मन का समाराधन करने में सक्षम है।

प्रोफेसर भगवानदास जैन,
अहमदाबाद 382445 (गुजरात)

जनवरी-फरवरी 2020 की 'वैचारिकी' पत्रिका में काल गणना के बारे में आइंस्टीन की व्याख्या बहुत सुंदर है। पिछले पृष्ठ पर चित्र रमणीय है।

'भारत की अभिवादन संस्कृति' 'राजगृह के ऐतिहासिक और दर्शनीय स्थल' आदि लेखों से प्रकाशित 'वैचारिकी' पत्रिका का साधुवाद।

बी एस. शांताबाई
प्रधान सचिव, कर्नाटक महिला हिन्दी सेवा समिति
178, श्रीमती पुट्टम्मा रस्ता, छठा क्रॉस,
चामराजपेट, बेंगलूरु 560 018
दूरभाष 080 26617777

साल के आखिर में सौगात स्वरूप देश की सुनामधन्य संस्था भारतीय विद्या मंदिर की शोध प्रधान पत्रिका वैचारिकी के दो दमदार अंक मिले।

संपादक महोदय को हृदय से धन्यवाद।

लगता तो यह है कि ये साल और कोरोनाकाल कभी न जाएगा जिसने दुनिया के अधिकांश देशों में अपने बहुत

बुरा होने की पहचान रहा किया है। अच्छा हुआ, यह जान गए हैं और अपना बोरिया-बिस्तर बांध रहा है। वरना अपनी प्यारी बहन महामारी के साथ मिलकर वह न जाने और क्या नया गुल खिलाता!

नया साल अब बस आने को है, नई उम्मीदें जग रही हैं, क्योंकि आज नई तैयारियाँ और नए उपाय भी पूरे देश के साथ हैं। जैसा कि वैचारिकी के श्रद्धेय प्रधान संपादक डॉ. विट्ठलदास जी मूंधड़ा ने भी अपने संपादकीय में फरमाया है।

प्रस्तुत दोनों अंकों में एक से बढ़कर एक तथ्य परक शोध आधारित आलेखों से गुजर कर मन प्रसन्नचित हो गया।

शोध की धारा ही सही, लेकिन मार्च अप्रैल/मई जून वाले अंक में हिन्दी काव्य में गंगा का पौराणिक व आध्यात्मिक स्वरूप, राम हमारी संस्कृति का सारस्वत हस्ताक्षर हैं और होला महल्ला से लेकर हिंदी साहित्य, हिंदीभाषा, नारी विमर्श और हिंदी गुजराती गजल तथा हिन्दी भाषा के मुसलमान कवियों का स्वर्णकाल जैसे विषय आधारित, हिन्दी भाषा और भारतीय संस्कृति के संदर्भ में जो लेख देखने-पढ़ने को मिले, वह अद्भुत है।

दूसरी ओर जुलाई अगस्त/सितम्बर अक्टूबर अंक में प्रकाशित पहले लेख गुजराती कृति गिरधर रामायण का संदर्भ वैभव से लेकर आखिरी लेख केदारनाथ सिंह की कविताओं में नारी संवेदना जैसे विविध विषयों और दोनों अंकों के पाठक मंच के अंतर्गत प्रकाशित सभी लेखन सामग्री को समग्र रूप में देखकर मन गदगद हो गया।

इन दोनों अंकों के सभी लेखकों का साधुवाद और वैचारिकी परिवार के सभी सदस्यों को अंतरमन से धन्यवाद।

छोटा मुंह, बड़ी बात; क्षमा चाहते हुए, मेरा एक सुझाव है कि वैचारिकी में माँ शारदे की तस्वीर के ऊपर या नीचे जो पंक्तियाँ, वर दे, वीणावादिनि... उद्धृत काव्य पंक्तियां हैं, उनके नीचे निराला जी का नाम जरूर लिखें। क्योंकि ये पंक्तियां स्व. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जी की ही हैं।

सुरेश शॉ, कथाकार
8, पॉटरी रोड, कोलकाता-700015
मो. 9330885217

आपके द्वारा प्रेषित द्वैमासिकी वैचारिकी का मार्च अप्रैल 2019 का विचार-समृद्ध अंक मिला। अधिकांश मनोयोग से पढ़ा। सर्वप्रथम 'विचार' शीर्षक आपके संपादकीय ने ध्यानाकृष्ट किया जो कीर्तिशेष बहुआयामी आलोचक डॉ. नामवर सिंह पर केन्द्रित है। आपने केवल चार पृष्ठों के संक्षिप्त संपादकीय में नामवर सिंह जी के व्यक्तित्व कृतित्व पर अपने घनीभूत 'विचार' बखूबी रख दिए हैं। आपने समुचित ही कहा है कि नामवर सिंह जी ने आलोचना को सृजनात्मकता की गरिमा प्रदान की जिसके फलस्वरूप उनकी पुस्तक 'कविता के नये प्रतिमान' (1968) साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत हुई। 'विचार' में ही उल्लिखित डॉ. कैलाशनाथ पाण्डेय का विशद आलेख 'हिन्दी आलोचना के शिलंधरी, शिखरः नामवर सिंह' को भी मनोयोग से पढ़ा। पाण्डेय जी ने यथार्थ ही कहा है कि मार्क्सवादी आलोचक होते हुए भी उनकी अन्तर्दृष्टि सौन्दर्यवादी ही रही है।

नामवर सिंह, निस्संदेह मूलतः एक संवेदनशील कवि थे, किन्तु बकौल 'कवि' शमशेर बहादुर सिंह नामवर जी के युवा कवि को उनके वयस्कतर होते मार्क्सिस्ट आलोचक ने दबा दिया। बहरहाल आवश्यकता इस बात की है कि डायरी आदि के पन्नों में लिखित उनकी सारी कविताओं को उपलब्ध कर उन्हें प्रकाशित किया जाए ताकि समकालीन अधिकांश कवियों के सामने नामवर जी का यह संवेदनशील अज्ञात पहलू भी उजागर हो सके।

पुनश्च, प्रस्तुत अंक में भी आपने भाषा-सम्बन्धी चार पठनीय ज्ञानवर्द्धक आलेख प्रकाशित किये हैं। इसी संदर्भ में 'पाठक मंच' शीर्षक स्थायी स्तंभ के अंतर्गत स्व. नथमल केडिया का संक्षिप्त लेख 'क्या हिन्दी की जमीन खिसक रही है?' भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है, बड़ा रोचक व विचारोत्तेजक भी।

'वैचारिकी' का यह अंक अपनी घनीभूत विचार मूलक सामग्री के चलते सर्वथा संग्रहणीय है। आपके संपादकत्व में 'वैचारिकी' शतायु हो'--यही कामना!

प्रो. भगवानदास जैन
अहमदाबाद 382445 (गुजरात)

स्वत्वाधिकारी भारतीय विद्या मंदिर के लिए प्रकाशक मुद्रक नागरमल सिंघी द्वारा कलकत्ते 1984 से, मलूकचन्द रोड, बीकानेर के लिए कम्प्यूटर एन मीडिया, 25, सी.आर. एवेन्यू कोलकाता 700 में मुद्रित एवं भारतीय विद्या मंदिर, रतन बिहारी जी का मंदिर, बीकानेर से प्रकाशित। अध्यक्ष एवं प्रधान संपादक-डॉ. विट्ठलदास मूंधड़ा।

भारतीय विद्या मंदिर के प्रकाशन

हिन्दी साहित्य यंगीय भूमिका
कृष्णबिहारी मिश्र
मूल्य 750/- पृ.सं. 551
ISBN 978-81-89302-48-1

श्रीरामकथा की कथा (प्रथम खण्ड)
आचार्य सोहनलाल रामरंग
मूल्य 600/- पृ. सं. 379
ISBN : 978-81-89302-46-7

श्रीरामकथा की कथा (द्वितीय खण्ड)
आचार्य सोहनलाल रामरंग
मूल्य 600/- पृ. सं. 381
ISBN : 978-81-89302-50-4

Holy Ganga
Tr. Jaikishandas Sadani
Price Rs. 750/- Pages : 531
ISBN : 978-81-89302-67-7

Underground Shrine
Jaikishandas Sadani
Rs. 200/- Pgs. 112
ISBN 978-81-89302-00-0

Wisdom of Upanishads
Tr. Jaikishandas Sadani
Rs. 150/- Pgs. 124
ISBN : 81-89302-04-4

Rosary of Hymns
Tr. Jaikishandas Sadani
Rs. 150/- Pgs. 154
ISBN 81-89302-01-9

Pramlocha
Tr. Jaikishandas Sadani
Rs. 100/- Pgs. 125
ISBN 978-81-89302-02-7

नित्य कीर्तन : रस रत्नाकर
मूल्य 900/-
ISBN : 978-81-89302-35-1

पुस्तकादेश हेतु संपर्क करें
भंवरलाल सांगानी, सिम्प्लेक्स हाउस, 27, शेक्सपीयर सरणी, कोलकाता-700 017 मोबाइल : 9830559364 ईमेल : [illegible]

From	TO
BHARATIYA VIDYA MANDIR 12/1, Nellie Sengupta Sarani Kolkata - 700087 (W.B.)	

Bharatiya Vidya Mandir

Simplex Infrastructures Ltd

PMKVY के तहत
कामगारों के लिए रोजगारोन्मुखी
निर्माण कौशल प्रशिक्षण

प्रशिक्षण कार्यक्रम की मुख्य बातें:

80% अभ्यास और 20% सिद्धांत

1. कार्यस्थल अभ्यास प्रशिक्षण में निम्नलिखित अभ्यास शामिल हैं:
   - स्टील रिफोर्सिंग पर 10 दिन का प्रशिक्षण
   - शटरिंग फॉर्मवर्क एवं कारपेंट्री पर 10 दिन का प्रशिक्षण
   - मेसनरी एवं कंक्रीट टेक्नोलॉजी पर 10 दिन का प्रशिक्षण
   - सहायक इलेक्ट्रीशियन पर 10 दिन का प्रशिक्षण
   - श्रम प्रबंधन और साइट सेफ्टी का ज्ञान
2. किसी भी प्रकार का शुल्क नहीं देना है
3. PMKVY के पाठ्यक्रम पूरा होने पर उत्तीर्ण कामगारों को CSDCI द्वारा प्रमाण पत्र दिया जाता है

सरकार की PMKVY योजना को आगे ले जाने के लिये बी.वी.एम - सिम्प्लेक्स इंफ्रास्ट्रक्चर्स लिमिटेड, परियोजना स्थलों पर कामगारों के लिये कार्यस्थल अभ्यास प्रशिक्षण की व्यवस्था कर रही है। इस प्रशिक्षण के द्वारा कामगार अपनी कमियां दूर कर सकेंगे तथा सरकार से [illegible] सर्टिफिकेट भी प्राप्त कर सकेंगे।

• इससे कामगारों के रोजगार में वृद्धि होगी

प्रशिक्षण अवधि एवं समय	• [illegible] 10 दिन के लिये • [illegible], सुबह 9:00 बजे से शाम 5:30 बजे तक
बैच साइज	• न्यूनतम 20 कैंडिडेट तथा अधिकतम 30 कैंडिडेट प्रति बैच
प्रशिक्षण स्थान	• किसी भी [illegible] साईट पर
प्रशिक्षण शुल्क	• शुल्क मुक्त • CSDCI द्वारा [illegible]

सम्पर्क सूत्र

Kolkata (Regd. Office)
Mr. S. L. Somani
Bharatiya Vidya Mandir
12/1, Nellie Sengupta Sarani
Kolkata - 700087 [illegible]
Email: [illegible]

New Delhi (Branch Office)
Col. N. B. Saxena
BVM - SIMPLEX
[illegible] House, 82-85, Nehru Place
Delhi - 110019, Ph. No.: [illegible]
Web: [illegible]